संसारसागरमन्थनम्

प्रथम खण्ड

चन्द्रकला

(बालातपरक्ताशशिनी)

हिन्दीरूपान्तरकार

डा० जगदम्बाप्रसाद सिनहा एम० ए०, पी-एच०डी०



अखिल भारतीय संस्कृत परिषद्

लखनऊ

संसारसागरमन्थनम्

प्रथम खण्ड

चन्द्रकला

(बालातपरक्ताशशिनी)



अखिल भारतीय संस्कृत परिषद्

लखनऊ

संसार सागर मन्थनम्

(प्रथम खंड)



पूना (महाराष्ट्र) के एक विद्वान ब्राह्मण के पास
पीढ़ियों से सुरक्षित संस्कृत हस्तलिखित
ग्रन्थ का पूने के तत्कालीन कलेक्टर
श्री एफ० डब्लू० बेन आई० सी० एस०
द्वारा किए गये अँग्रेजी अनुवाद का
हिन्दी रूपान्तर



प्रकाशक

अखिल भारतीय संस्कृत परिषद्

लखनऊ

प्रकाशक

अखिल भारतीय संस्कृत परिषद्

लखनऊ

प्रथम संस्करण २१००

सन् १९६३ ई०

मूल्य दो रुपए मात्र

मुद्रक

सरयू प्रसाद पांडेय

नागरी प्रेस

दारागंज, प्रयाग ।

समर्पण

पूने के प्लेग के प्रकोप में जिस ब्राह्मण का समस्त कुटुम्ब-परिवार नष्ट हो गया और जिसने स्वयं अन्तिम साँस लेने के पूर्व 'संसार सागर मन्थनम्' नामक अद्भुत संस्कृत ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति पूने के तत्कालीन कलेक्टर श्री एफ० डब्लू० वेन आई० सी० एस० को इस आग्रह से भेंट की कि यदि वह उचित समझें तो प्रकाशित कर दें किन्तु उनका (ब्राह्मण का) नाम कथमपि प्रकट न करें,

उस ब्राह्मण की

तथा

श्री एफ० डब्लू० वेन की

स्मृति को

संसार सागर मन्थनम् का यह हिन्दी रूपान्तर सादर समर्पित

चन्द्रकला

(बालातपरक्ताशशिनी)

मथितार्णववीचिविलासिनि
नरवंशप्रिये
गगनादवतीर्य सुधानिधि
जगदन्धमध्ये
त्रिजगन्ति नुतः स्तनमण्डलम्
धृतशक्तित्रयम्
प्रलयस्थितिसंगपयोधरम्
शयनम् शरणम्
ममापि च क्षपयतु नीललोहितः
पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः

हिन्दी अनुवाद

[प्रातःकालीन सूर्य के आतप से अनुरक्त चन्द्रकला]

अयि सुधामयि ! तुम इस संसार के अन्धकार को दूर करने के लिए स्वर्ग से धरती पर उतर आती हो। अयि मथित-सागर-वीचि-विलासिनि ! हम तीनों लोक (बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था) में तुम्हारे उस स्तनमंडल की वन्दना करते हैं जो (सृष्टिकर्त्री, पालनकर्त्री और प्रलयकर्त्री) तीनों रहस्यमय नारी शक्तियों से सम्पन्न है। अयि नर वंश प्रिये ! तुम्हारा वह स्तनमंडल सृष्टि, स्थिति और प्रलयकाल में क्रमशः दुग्ध को धारण करने वाला, शय्योपधान एवं शरण प्रदान करने वाला है।

शक्ति सम्पन्न स्वयम्भू भगवान् नीललोहित मेरे भी पुनर्जन्म का विनाश करें।

प्रकाशकीय वक्तव्य

"संसारसागरमन्थनम्" का यह प्रथम सुधाविन्दु एक अंगरेजी ग्रन्थ का हिन्दी रूपान्तर है; किन्तु उक्त अंगरेजी ग्रन्थ स्वयं एक संस्कृत ग्रन्थ का अनुवादमात्र है। हमें इस बात का अत्यन्त खेद है कि हम बहुत प्रयत्न करने पर भी मूल संस्कृत ग्रन्थ का पता नहीं लगा पाये और इसलिए उसे प्रकाशित करने में असमर्थ हैं।

मूल संस्कृत ग्रन्थ अनुवादक श्री एफ़० डब्लू० बेन को बहुत दिन हुए पूना में एक मरणासन्न संस्कृत पण्डित से मिला था। वह जिस प्रकार उन्हें मिला था, उसकी कहानी भी कम रोचक नहीं है। उसे पाठक पुस्तक के आदि में दी हुई श्री बेनकृत भूमिका में स्वयं पढ़ लेंगे।

ग्रन्थ का अंगरेज़ी अनुवाद इंग्लैंड में ही प्रकाशित हुआ था। वहाँ उसके अब तक कई संस्करण निकल चुके हैं। दीर्घकाल तक इस भारतीय पीयूष का आनन्द विदेशों के अंग्रेजी पाठक लेते रहे। दुर्भाग्य की बात है कि हमारे देश की कृति हमारे देश में इतने समय बाद उपलब्ध हो सकी। वह भी संस्कृत में नहीं हिन्दी में।

अनुवादक, श्री एफ़० डब्लू० बेन का बहुत दिन हुए देहान्त हो गया। अंग्रेजी संस्करण के प्रकाशकों से लिखा-पढ़ी करने पर ज्ञात हुआ कि श्री बेन के वंशजों में उनकी केवल एक पुत्री विद्यमान है जो आस्ट्रेलिया में रहती है। प्रकाशकों ने ही कृपा करके उस पुत्री का पता भी लिख भेजा। हमने ग्रन्थ की मूल हस्तलिखित प्रति का पता उपर्युक्त प्रकाशकों से लगाने के अतिरिक्त इस सम्बन्ध में श्री बेन की उक्त पुत्री से भी लिखकर पूछा; किन्तु न प्रकाशक ही

कुछ बतला सके और न वही। इंग्लैंड में जितने ऐसे पुस्तकालय या संग्रहालय हैं, जहाँ संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों के होने की सम्भावना थी, वहाँ भी हमने मूलग्रन्थ का पता लगाने का भरसक प्रयत्न किया; किन्तु वहाँ भी असफलता ही हाथ लगी।

इस देश का और विशेषकर संस्कृत का कहानी साहित्य, प्राचुर्य और उत्कृष्टता दोनों ही दृष्टियों से ऐसा है, जिसके लिए हम वास्तविक गर्व कर सकते हैं। वास्तव में कहानियों के क्षेत्र में भारतीय कहानी-साहित्य ने समस्त विश्व-साहित्य को प्रभावित किया है। किन्तु खेद है कि हमारा बहुत सा कहानी-साहित्य अब भी लुप्त है या नष्ट हो चुका है। प्रस्तुत ग्रन्थ भी इसी श्रेणी में आता है।

हमें पहले इस बात का सन्देह था कि श्री बेन के अंग्रेज़ी अनुवाद के हिन्दी रूपान्तर का प्रकाशन हमारी संस्कृत परिषद के उद्देश्यों के अन्तर्गत आ सकता है या नहीं और इसी से हमें इस कार्य को हाथ में लेने में कुछ संकोच भी था। हम उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व मुख्य-मंत्री डा० सम्पूर्णानन्द जी के अत्यन्त कृतज्ञ और आभारी हैं कि उन्होंने न केवल इस सन्देह और संकोच का निवारण ही किया, अपितु हमें अपना आशीर्वाद तथा सरकारी कोष से ५ सहस्र रुपये देकर इस ग्रन्थ का हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत करने के लिए प्रोत्साहित भी किया। उन्होंने कहा कि मूल संस्कृत ग्रन्थ के विषय में हतोत्साह होने की आवश्यकता नहीं है; सम्भव है वह आगे चलकर मिल ही जाय; किन्तु जब तक वह न मिले, तब तक इस देश के लोगों को, विशेषकर हिन्दी जानने वालों को, इस संसारसागरमन्थनोद्भूत सुधा से वंचित रखना परिषद् के उद्देश्यों के प्रतिकूल होगा।

हम उत्तर प्रदेश के वर्तमान् शिक्षा-मंत्री आचार्य जुगलकिशोर जी के भी आभारी हैं कि उन्होंने कृपापूर्वक ढ़ाई सहस्र रुपये और देकर इस कार्य को आगे बढ़ाने में हमारी सहायता की।

श्री बेन ने अपने अनुवाद में मूल ग्रन्थ के अतुलनीय लालित्य और अवर्णनीय माधुर्य को अंग्रेजी भाषा में उतारने का स्तुत्य प्रयत्न किया है और बहुत अंशों में उन्हें इस दिशा में सफलता भी मिली है; किन्तु अनेक स्थानों पर उन्हें स्वयं स्वीकार करना पड़ा है कि संस्कृत का अमुक पद या अमुक शब्दावली अंग्रेजी में अनूदित हो ही नहीं सकती। हिन्दी में अवश्य हो सकती थी; किन्तु मूल ग्रन्थ के अभाव में यह हमारे लिए भी सम्भव नहीं हो सका है और संस्कृत का रस माधुर्य इस हिन्दी अनुवाद में भी आने से रह गया है, जिसका खेद हमें कम नहीं है।

श्री बेन अभारतीय होते हुए भी संस्कृत के विद्वान और प्रेमी थे। "संसारसागरमन्थनम्" का अनुवाद प्रस्तुत करके और उसके द्वारा संस्कृत भाषा तथा संस्कृत वाङ्मय के प्रति लोगों में अनुराग उत्पन्न करके उन्होंने संस्कृत की वास्तविक सेवा की है। हम इसके लिए हृदय से उनके कृतज्ञ हैं। पाठकों से हमारा साग्रह अनुरोध है कि वे श्री बेन की लिखी भूमिका को एक बार अवश्य पढ़ें और ध्यान से पढ़ें। उसमें वे देखेंगे कि इस संस्कृत-भक्त ने स्थान-स्थान पर यह व्यक्त करने का प्रयत्न किया है कि संस्कृत साहित्य और भारतीय चिन्तन-परम्परा कितनी महती और कितनी प्रभावकारिणी है और उससे परिचित होना कितने बड़े सौभाग्य और गौरव की बात है। उक्त भूमिका से ही पाठकों को ग्रन्थ की विशेषता का भी पता लगेगा।

जहाँ तक प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद का सम्बन्ध है, अनुवादक ने मूल संस्कृत ग्रन्थ की भाषा और भावों तक पहुँचने का भरसक प्रयत्न किया है, किन्तु यह कार्य कितना कठिन था, यह पाठक स्वयं समझ सकते हैं और वे ही यह भी समझ सकते हैं कि अनुवादक इसमें किस सीमा तक सफल हुआ है।

इस ग्रन्थ की कहानियाँ ज्ञानप्रद ही नहीं अत्यन्त रोचक भी हैं। हमें विश्वास है कि इससे पाठकों की ज्ञानवृद्धि और मनोरंजन दोनों ही होंगे। यदि यह विश्वास अंशतः भी सत्य निकला तो परिषद् इस प्रयास में अपने को सफल समझेगी।

गोपालचन्द्र सिंह
मंत्री
अखिल भारतीय संस्कृत परिषद्
लखनऊ

निर्देश

प्रथम संस्करण की भूमिका

'चन्द्रकला' 'संसार-सागर-मन्थम्' नामक एक बृहद् ग्रन्थ का सोलहवाँ भाग है। हिन्दुओं की एक प्रसिद्ध पौराणिक कथा में यह बतलाया गया है कि किस प्रकार सुरों और असुरों ने एकत्र होकर अमृत को प्राप्त करने के लिये क्षीर सागर का मन्थन किया था। उन्होंने पहले तो क्षीर सागर में बहुत सी जड़ी-बूटियाँ डालीं। तत्पश्चात् मन्दराचल को मथानी बनाकर उसी से उसका मन्थन किया। समुद्र-मन्थन से उन्हें अमृत तो प्राप्त ही हुआ, अन्य वस्तुएँ भी प्राप्त हुईं। उनमें चन्द्रमा भी था, जिसे 'ओषधीनां पतिः' भी कहा जाता है।

संस्कृत भाषा में सूर्य की भाँति चन्द्रमा भी पुल्लिंग माना जाता है। जब कभी हिन्दू कवि चन्द्रमा का वर्णन स्त्री के रूप में करना चाहते हैं तो वे इसे दो प्रकार से करते हैं—या तो वे उसमें मानवीय गुणों का आरोप कर देते हैं या फिर उसके एक अंश को ही उसके पूर्ण रूप में प्रयुक्त करते हैं। चन्द्र-बिम्ब के सोलह भाग माने गए हैं। प्रत्येक भाग को कला कहते हैं। किसी सुन्दरी के लिए भी चन्द्रकला का प्रयोग किया जाता है।

'संसार-सागर-मन्थम्' नामक सम्पूर्ण ग्रन्थ चन्द्रमा के समान है। उसके सोलह भाग हैं। प्रत्येक भाग का नामकरण चन्द्रमा की एक-एक कला को लेकर किया गया है। जो भाग पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है उसका नाम है—'बालातपरक्ताशशिनी।' यहाँ 'रक्त' शब्द का श्लिष्ट प्रयोग है, क्योंकि उसका अर्थ 'अनुरक्त' भी होता है। अभिप्राय कथा की उस नायिका से है, जो नायक में अनुरक्त हो गई थी। जैसा कि पाठक स्वयं देखेंगे, नायक का नाम भी 'सूर्यकान्त' है।

दस वर्ष पूर्व मैं यह सोच भी नहीं सकता था कि मुझे बोकाचियो* का काम करना पड़ेगा और मुझे भी भक्षक के मुँह से मांस की भाँति महामारी से कथाएँ प्राप्त हो सकेंगी। फिर भी, जिसकी कभी आशा ही न थी वह भी हो ही गया। कैसे? यह निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट हो जायगा।

मेरे मन में प्रायः यह विचार आया करता था कि अभी कुछ ही दिनों से तो यूरोप को संस्कृत साहित्य के विषय में जानकारी प्राप्त हुई है। अतः मैं प्रायः इसी कुतूहल में पड़ा रहता था कि सम्भवतः भारत के महान् सागर में अब भी बहुत सी साहित्यिक निधियाँ गुप्त रूप से बिखरी पड़ी होंगी, जिन्हें भविष्य में मन्थन करके निकाला जा सकता है। किन्तु, मुझे यह आशा कभी नहीं थी कि मुझे अपने प्रश्न का क्रियात्मक उत्तर भी कभी प्राप्त हो सकेगा। कुछ समय पूर्व पूना में महामारी का प्रकोप हुआ था। प्रतिदिन सहस्रों की संख्या में मनुष्य उसके शिकार हो रहे थे। इस महामारी से लड़ने के लिये सरकार ने कुछ अधिकारियों को नियुक्त किया था। संयोग से उनसे मेरा व्यक्तिगत परिचय हो गया। इससे मुझे एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण की किंचित् सेवा का अवसर प्राप्त हुआ। ब्राह्मण का नाम मैं गुप्त ही रखूँगा, क्योंकि उसकी ऐसी ही इच्छा थी। मेरी सेवा इतनी नगण्य थी कि उसके विषय में किसी अंग्रेज ने दुबारा सोचा ही न होगा। किन्तु ऐसे मामलों में हिन्दुओं का दृष्टिकोण बिल्कुल भिन्न हुआ करता है। यदि अंग्रेज अपने घर को महल समझता है तो हिन्दू के लिये भी उसका घर तीर्थ-स्थान से कम नहीं होता। वह उसे अत्यन्त पवित्र समझता है और यदि उसमें किसी अपवित्र व्यक्ति का पदार्पण हो जाय तो वह उसे अपवित्र समझने लगता है। मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वह ब्राह्मण यह समझता था कि मैंने उसके परिवार को किसी अज्ञात

---

*मध्यकालीन एक रोमन कथाकार, जिसने 'डिकेमेरान' नामक पुस्तक में प्रेम कहानियों का संग्रह किया था।

और शाश्वत विपत्ति से मुक्त कर दिया है। कुछ समय पश्चात् जब उसे यह पता चला कि मैं उसकी 'सुन्दर और पवित्र' भाषा का एक तुच्छ विद्यार्थी हूँ और मैं उसके प्रिय कालिदास की मूल कृतियों को समझ सकता हूँ तो वह मेरे प्रति इतना आदर भाव रखने लगा कि उससे कभी कभी मुझे संकोच होने लगता था। वह मुझसे मिलने के लिये दो-तीन बार आया। उसको यह सोचकर अत्यन्त आनन्द होता था कि वह अपने प्राचीन कवियों की चर्चा एक ऐसे व्यक्ति से कर रहा है जो अधिक नहीं तो कम से कम एक योग्य श्रोता तो है ही। जब वह मेरे पास से चलने लगता तो मुझे ऐसा प्रतीत होता कि वह मुझसे कोई बात कहना चाहता है, जिसके कहने में उसे कुछ संकोच हो रहा है। जितनी बार वह मुझसे विदा हुआ; मुझे यही प्रतीत हुआ कि वह चिन्तित है, और उसका रहस्य गुप्त ही रह गया है। उस समय मैं सोचता था कि वह ब्राह्मण मुझसे जो कुछ निवेदन करना चाहता है उसके स्वीकार किए जाने में उसे कुछ सन्देह है, इसीलिये वह बहुत प्रयत्न करने पर भी उसे कहने का साहस नहीं कर पाता है। परन्तु यह मेरी भूल थी।

सहसा एक दिन हम दोनों का मिलना समाप्त हो गया। महामारी ने उसके घर में घुसकर उसके परिवार को साफ कर दिया था। वह उसकी स्त्री, उसके बच्चों और उसके अन्य सगे-सम्बन्धियों—सभी को समेट ले गई थी। उसके स्पर्श से यदि कोई बच सका था तो वह अकेला ब्राह्मण ही, किन्तु वह भी बहुत समय के लिये नहीं। दिन भर बाहर रहने के बाद सायंकाल जब मैं विलम्ब से घर लौटा तो मुझे अपने घर की सीढ़ियों पर बैठा हुआ एक संवाद वाहक मिला। वह कई घंटों से मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। उसका धैर्य असीम था, जो पूर्वीय संस्कृति की विशेषता है। अन्ततोगत्वा महामारी को मेरे वृद्ध ब्राह्मण का भी स्मरण हो आया था और उस ब्राह्मण ने मुझे 'एक अत्यन्त आवश्यक कार्य वश' मिलने के लिये बुलाया

था। मैं एक अलग डेरे में उससे मिलने के लिये गया, जहाँ वह हटाकर रखा गया था। मुझे यह देखकर बड़ी शान्ति मिली कि मेरे आने तक वह चैतन्यावस्था में था, क्योंकि वह बहुत ही सज्जन था। एक ब्राह्मण, यदि वह सज्जन भी हो तो एक अद्भुत मानव बन जाता है। जब वह मेरे उपकारों के लिये मेरे प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करने लगा तो मैं बड़े विस्मय में पड़ गया। उसने यह भी बतलाया कि उसके प्रति मेरी सभी भलाइयाँ व्यर्थ हो गईं; क्योंकि अपने परिवार में अब वही अकेला रह गया था। उसे प्रसन्नता इस बात को थी अब वह भी अपने कुटुम्बियों के मार्ग का अनुगमन करने जा रहा था। उसने प्रकट किया कि वह अपनी मृत्यु से पहले मुझसे मिलना चाहता था, क्योंकि वह मुझे कोई बहुमूल्य वस्तु देना चाहता था। फिर उसने वह बहुमूल्य वस्तु निकाली, जिसे कोई अनाड़ी व्यक्ति किसी महिला का छः बटनों वाला दस्ताना ही समझता। वह सिंगारदान के आकार की लकड़ी की दो पटरियों के बीच में बँधा हुआ था और उसके चारों ओर एक डोरी बँधी हुई थी। मैं अपने अनुभव से समझ गया कि यह कोई हस्तलिखित ग्रन्थ है। उसने उसे मेरे हाथ में पकड़ाते हुये कहा—"यह मेरे परिवार में स्मरणातीत काल से सुरक्षित है।" यदि उसके परिवार में उसे संभालने वाला कोई व्यक्ति शेष होता तो वह उसे कभी किसी को दे नहीं सकता था। परन्तु एक तो उसके सभी कुटुम्बी मर चुके थे, दूसरे उसकी मृत्यु के उपरान्त अधिकारीगण उसे कहीं गाड़ देते, इसीलिये वह उसे मुझे देने को तैयार था, केवल मेरे स्वीकृति देने भर की देर थी। ब्राह्मण ने मुस्कराने का प्रयत्न करते हुये कहा—"यदि आप इसे स्वीकार न कर सकें तब भी कोई बात नहीं है। यह ग्रन्थ भी एक सती की भाँति अपने स्वामी के साथ अग्नि की शरण ले लेगा। किन्तु यह दुःख की ही बात होगी, क्योंकि ग्रन्थ सुरक्षा के योग्य है।" मैंने उसकी भेंट स्वीकार कर ली और उसने मुझे

विदा दी। जब मैं उस वृद्ध ब्राह्मण से अलग हुआ तो मैं बड़ा दुःखी था, क्योंकि शोक और समीप खड़ी हुई मृत्यु ने उसे साक्षात् विपत्ति की मूर्त्ति बना दिया था। बाद में मुझे पता चला कि मेरे चले आने के छत्तीस घण्टे बाद प्रत्यूष बेला में उसकी मृत्यु हो गयी।

यद्यपि ग्रन्थ स्वामी ने हस्तलिखित ग्रन्थ के महत्त्व के विषय में मुझे संकेत किया था, किन्तु मुझे उसके मूल्य के विषय में शङ्का थी, क्योंकि हिन्दू तो संस्कृत में लिखी लिखी हुई किसी भी वस्तु के उपासक हो सकते हैं। उस हस्तलिखित ग्रन्थ को धुएँ आदि से शुद्ध करके बड़ी कठिनता से जब मैं उसे अग्नि परीक्षा और अधिकारियों की दृष्टि से बचा सका, तब मैं उसके परीक्षण में जुट गया। मैंने उस वृद्ध ब्राह्मण के पूर्वजों से क्षमायाचना की। क्योंकि मुझे उनके निर्णय में सन्देह था, और ब्राह्मण को उसकी भेंट के लिये साधुवाद दिया। अब मैं साहस के साथ कह सकता हूँ कि वह ग्रन्थ सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में अद्वितीय है। इस बात का अन्तिम निर्णय तो मैं स्वयं पाठकों पर छोड़ रहा हूँ; किन्तु इस सम्बन्ध में इतना अवश्य कहूँगा कि अनुवाद कर देने से संस्कृत भाषा का माधुर्य जितना नष्ट हो जाता है, उतना किसी अन्य भाषा का नहीं। इसलिये पाठकों से मेरा यह निवेदन है कि वे इसे लगातार कई बार पढ़ें, अन्यथा वे इसकी अनेक विशेषताओं से वञ्चित रह जाँयगे। यहाँ मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि लौकिक संस्कृत की अन्य रचनाओं से यह ग्रन्थ दो महत्त्वपूर्ण बातों में भिन्न है—एक तो अपनी शैली की सरलता तथा दूसरी कथावस्तु की मौलिकता में। जहाँ तक उपर्युक्त बात का सम्बन्ध है, उसके विषय में प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि संस्कृत के कवियों की अपनी कोई मौलिकता नहीं हुआ करती। वे तो पुरानी कथावस्तुओं को ही छन्दोबद्ध करके उन्हें अलंकृत कर दिया करते हैं। उनकी मौलिकता कथावस्तु में नहीं, अपितु उसके निर्वाह में होती है। इस दृष्टि से हमारा कवि अपवाद है। वह कवि चाहे जो कोई भी रहा हो, उसे कल्पनाशक्ति

प्राप्त थी, क्योंकि कथावस्तु तो उसने 'वेतालपञ्च विंशतिका' से ली थी, किन्तु उसमें उसने इतनी नवीनता एवं काव्यात्मकता उत्पन्न कर दी कि वह अपने स्रोत से बिल्कुल भिन्न हो गयी है। इसकी सभी कथायें मौलिक और मनोरंजक हैं। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत ग्रन्थ की शैली भी संस्कृत के अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक सरल है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने जान बूझकर परवर्ती संस्कृत की रचनाओं की शैली को न लेकर रामायण—महाभारत की शैली को अपनाया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में न तो कृत्रिमता है, न शैली की दुरूहता, न शब्दाडम्बर, न कठिन श्लेषों का प्रयोग, न लम्बे-लम्बे समास—जो 'कादम्बरी' में अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गये हैं। कादम्बरी के समान लौकिक संस्कृत के अन्य ग्रन्थों में भी यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है—वैसा ही अलङ्कारों का निरुद्देश्य प्रयोग और वैसा ही जी उबा देने वाला वाग्जाल। परिणाम यह होता है कि सम्पूर्ण रचना नीरस प्रतीत होने लगती है और छन्दों की तड़क-भड़क में उसकी सुन्दरता और सरलता समाप्त हो जाती है। जिस प्रकार अपनी जटिलता और अतिवृद्धि से लता वृक्ष के रस को चूसकर उसे सुखाकर नष्ट कर देती है, जिसकी श्री वृद्धि के लिये उसे लगाया जाता है। उसी प्रकार भड़कीले आलङ्कारिक प्रयोगों की अतिवृद्धि एवं दिखावटी साहित्यिक सुन्दरता ने भी भारतीय कवि के मानसिक सन्तुलन को भङ्ग कर दिया है। साहित्य में वही वस्तुएँ सुन्दरतम हुआ करती हैं और इसीलिये नियमित रूप से परम्परागत भी—जो अत्यन्त सरल हों। साहित्यिक सजावट की आवश्यकता तभी पड़ती है, जब कवि के पास कहने को कुछ नहीं रहता। इस प्रकार वह कवि की कल्पना-हीनता सूचित करती है। हमारे कवि के पास कहने के लिये एक कथा थी, इसलिये वह सीधे-सादे, सरल और अनलङ्कृत ढंग से उसे कह भी सका।

अन्त में एक बात और है, मुख पृष्ठ पर जो शब्द शीर्षक वाक्य के रूप में लिखे हुये हैं, उनका भी अपना इतिहास है। वह वाक्य 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की अन्तिम पंक्ति है। इसका अर्थ संक्षेप में यह

है—'हे शिवजी, मुझे ऐसा वरदान दीजिये, जिससे मेरा पुनर्जन्म न हो।' इस कथा के अन्त में लिखे हुये इन शब्दों का भी एक रहस्य है। उपर्युक्त हस्तलिखित ग्रन्थ में ये शब्द एक और दूसरे की हस्तलिपि में लिखे हुये हैं। मेरे पास इसके लिये कोई प्रमाण तो नहीं है, किन्तु मुझे पूर्ण विश्वास है कि ये शब्द उस स्थान पर उसी वृद्ध ब्राह्मण के लिखे हुए हैं, जिसने इतिहास के सभी ग्रन्थों को कण्ठस्थ कर रख था। इन शब्दों को उसने उस समय लिखा होगा, जब वह उपर्युक्त हस्त-लिखित ग्रन्थ से विदा ले रहा था। वह इसीलिये अत्यन्त दुःखो और निराश था कि महामारी ने उसके सम्पूर्ण परिवार को नष्ट कर दिया और उसको भी उस वस्तु से अलग कर दिया, जिसे वह अपने जीवन का सर्वस्व मानता था। हमें आशा करनी चाहिये कि वृद्ध की अभिलाषा पूर्ण हुई होगी और भगवान् नील-लोहित ने उसे पुनर्जन्म के बन्धन से मुक्त कर दिया होगा।

———

द्वितीय संस्करण की भूमिका

यह दिखाने के लिये कि हिन्दू पौराणिक-कथाओं में सुन्दरी, चन्द्रमा और सागर के विचार किस प्रकार एक दूसरे में घुले-मिले रहते हैं, मैंने इस संस्करण के आवरण पृष्ठ के अन्दर एक श्लोक उद्धृत कर दिया है। यह श्लोक उक्त हस्तलिखित ग्रन्थ के अन्य भाग से लिया गया है। इसमें एकमयता का अच्छा उदाहरण देखने को मिलता है। जो लोग संस्कृत नहीं समझते हैं, उनके लाभ के लिये साथ में छायानुवाद भी दे दिया गया है, जो इस प्रकार है—

'सुधानिधि! आप इस संसार के अन्धकार को दूर करने के लिये स्वर्ग से उतर आइये। अयि आलोडित सागर की लहरियों से अठखेलियाँ करने वाली! हम तीनों लोक (बाल्यावस्था, युवास्था और वृद्धावस्था में) आपके उस स्तन मण्डल की वन्दना करते हैं, जो (सृष्टिकर्त्री, पालनकर्त्री और प्रलयकर्त्री) तीनों रहस्यमयी नारी—शक्तिओं से सम्पन्न है। अयि नरवंश प्रिये! आपका वह स्तनमण्डल सृष्टि, स्थिति और प्रलयकाल में क्रमशः दुग्ध को धारण करने वाला, शय्योपधान और शरण प्रदान करने वाला है।'

किन्तु उपर्युक्त छायानुवाद में हमें सागर का वह आलोडन एवं प्रतिध्वन नहीं प्राप्त होता जो संगीत की भाँति शब्दों के अर्थ को तुच्छ बना देता है। निम्नलिखित पद्यानुवाद में 'अर्थ' को अक्षुण्ण रखते हुये 'शब्द' को सुरक्षित रखने का प्रयास किया गया है—

Like a New Moon's exquisite Incarnation,
In the Ebb and Flow of a Surging Sea, wave-

breasted Beauty, the whole creation waves, and waxes, and rocks on thee ! For we rise and jall on thuy Bosom's Billow whose heaving Suell in our Home Divine, Our chalice at Dawn, and our hot Noon's Pillow,

Cur Erening's shrine.

———

चन्द्रकला

(बालातपरक्ताशशिनी)

भारतीय प्रेम-कहानी



कथामुख

मङ्गलाचरण

वह भगवान् त्रिलोचन आप लोगों की रक्षा करते रहें जिनका कण्ठ लोकरक्षा के लिये कालकूट का पान कर जाने से नीला पड़ गया है। गजानन मेरी विघ्न-बाधाओं को दूर करते रहें और भगवती वाणी मेरे मन को भावानुकूल शब्दों की प्रेरणा देती रहें।

प्राचीन काल में किसी देश में एक राजा रहता था, जिसका नाम था सूर्यकान्त। वीरता और नीति से अनुप्राणित उसकी सेनाएँ दिग्दिगन्त में समुद्र-तट तक फैल गयी थीं और उसकी बुद्धि भी समस्त ज्ञान-विज्ञान की पराकाष्ठा को पहुँच चुकी थी। उसे जिनका ज्ञान नहीं था, वे थे कामिनी और काम। वह स्त्री-द्वेष भाव का साक्षात् अवतार प्रतीत होता था, क्योंकि अत्यधिक रूपवान् होने के कारण वह अपने तेजःपुंज से उन निराश रमणियों के हृदय को दग्ध कर दिया करता था, जिनकी दृष्टि उस पर संयोगवश पड़ जाती थी। वह उन तरुणियों की चंचल दृष्टि के सामने भी हिमवत् शीतल ही बना रहता था। जैसे-जैसे समय बीतता गया, राज्य के विषय में मंत्रियों की चिन्ता बढ़ती गयी। उन्होंने कहा—"हमारे महाराज के कोई पुत्र नहीं है, इसलिये उनकी मृत्यु के उपरान्त उत्तराधिकारी के न होने से यह राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा।" मंत्रियों ने मिलकर आपस में मंत्रणा की और जहाँ कहीं से सुन्दरियाँ प्राप्त हो सकीं, वहाँ से उन्हें लाकर उन्होंने अपने महाराज के सामने नाना प्रकार के प्रलोभन प्रस्तुत कर दिए। राजा के ऊपर नारी-सौन्दर्य की सुन्दरतम सार की वर्षा होने लगी। परन्तु यह सब व्यर्थ हुआ। क्योंकि इन सुन्दरियों के दिव्य

लावण्य का प्रभाव उस राजा पर इससे अधिक नहीं पड़ सका, जितना किसी जंगली हाथी पर, उसकी पीठ पर वृक्ष की पत्ती टूटकर गिरने से पड़ता है। मंत्रियों को इस बात से बड़ी निराशा हुई और वे सोचने लगे—'वास्तव में एक सीमा पर पहुँच कर गुण भी दोष बन जाते हैं। महाराज स्त्रियों के कुसंग से दूर ही रहें—यह तो ठीक ही है, किन्तु इस सीमा तक इनका स्त्रीद्वेष भी किस काम का? इससे तो राज्य नष्ट हो जायगा।' इस प्रकार चिन्ता में डूबे हुए मंत्रियों ने पुनः आपस में विचार-विनिमय किया और अपने प्रतिनिधियों के द्वारा राजा से विवाह कर लेने का आग्रह करना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु राजा उन सबकी बात को सुनी-अनसुनी कर दिया करते थे। यह देख हताश मंत्रियों ने राजा को बिना बताये ही गुप्तचरों के द्वारा यह समाचार फैलवा दिया कि 'जो व्यक्ति महाराज के विचारों को बदल कर उन्हें विवाह के लिए तैयार कर देगा, उसे एक करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ प्रदान की जायँगी।' यह सुनकर बहुत से अनाड़ी आ पहुँचे और मंत्र-तंत्र आदि अनेक युक्तियों का प्रयोग करने लगे; किन्तु अभीष्ट उद्देश्य में सफल होता हुआ कोई भी दिखाई नहीं पड़ा। इसके विरुद्ध हुआ यह कि स्त्रीजाति के प्रति राजा का द्वेष बढ़ता ही गया। यहाँ तक कि जो भी स्त्री उसके सामने पड़ जाती, उसे वह दंड देकर राज्य से निकलवा दिया करता था। इससे मंत्रियों की चिन्ता और भी बढ़ गयी कि कहीं सम्पूर्ण राज्य ही स्त्रीजाति से विहीन न हो जाय। उन्होंने राजा के चारों ओर गुप्तचर नियुक्त कर दिये, और उन्हें यह आज्ञा दी कि 'जहाँ कहीं भी महाराज जायँ, वहाँ तुम लोग उनके आगे- आगे जाओ और उनके मार्ग से स्त्रियों को हटाते जाओ।' इस आज्ञा का पालन उतना ही कठिन था, जितना कृपाण की धार पर खड़े होना; क्योंकि प्रेम और कुतूहलवश राज्य की सभी स्त्रियाँ उसके दर्शनार्थ उसी प्रकार खिंची चली आती थीं, जिस प्रकार चुम्बक से लोहे के टुकड़े खिंच आया करते हैं।

एक दिन राज्य में एक चित्रकार आया, और आते ही उसने नगर के कौतुकों की छानबीन प्रारम्भ कर दी। लोगों ने चित्रकार से कहा—"हमारे महाराज सूर्यकान्त स्वयं ही एक कौतुक बन गये हैं; क्योंकि इतने बड़े महाराज होने पर भी उन्हें कोई भी शक्ति स्त्रियों के सम्पर्क में जाने के लिये प्रेरित नहीं कर पा रही है। उनके लावण्यमयूर से महाराज एक सर्प की भाँति दूर ही दूर भागते रहते हैं। वे स्वयं कामदेव के समान सुन्दर हैं परन्तु आश्चर्य तो यह है कि मकरध्वज कामदेव ने स्त्री जाति के हृदय को बींधने के लिये जिन्हें छठा अस्त्र बनाया था, वे महाराजा ही अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहते हैं। क्या यह भी सम्भव है कि सूर्य तपने से और पवन बहने से इनकार कर बैठे?" उनकी यह बात सुनकर चित्रकार हँस पड़ा। उसने कहा—"मेरे पास एक ऐसा जादू है जो महाराज पर वैसा ही काम करेगा, जैसा कि सूर्य, सूर्यकान्ति मणि पर।" एक मंत्री ने इस बात को सुन लिया और दौड़कर अन्य मंत्रियों से चित्रकार के आने और इस प्रकार बढ़-चढ़ कर बातें करने का वर्णन किया। शीघ्र ही मंत्रियों ने चित्रकार को बुलाया। उससे अनेकों प्रश्न किये और राजा का पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। उन्होंने चित्रकार को यह वचन दिया कि यदि उसकी बात सत्य हुई तो उसे बहुत सा पुरस्कार दिया जायगा। चित्रकार ने कहा—"आप लोग कुछ ऐसी युक्ति निकालें कि महाराज मुझे बुला भर लें, और आगे सब कुछ मेरे ऊपर छोड़ दीजिए।"

मंत्रियों ने राजा के पास जाकर निवेदन किया—"श्रीमन्! आपके राज्य में एक ऐसा चित्रकार आया है, जिसके समान कुशल चित्रकार तीनों लोकों में दुर्लभ है।" यह सुनते ही राजा गद्‌गद् हो उठा, क्योंकि वह स्वयं भी चित्रकारी एवं अन्य कलाओं में अत्यन्त निपुण था। राजा ने चित्रकार को अपने पास बुलवाया। उसके सामने आकर और उसके अप्रतिम सौन्दर्य को देखकर चित्रकार चकित हो गया। उसने कहा—"महाराज! आपके असाधारण सौन्दर्य का दर्शन तो मेरे लिए

एक अमूल्य वरदान है, जिससे मेरा जन्म सफल हो गया। अब मुझे केवल एक ही बात और श्रीमान् से निवेदन करनी है कि आप मुझे यह अनुमति दे दी दीजिए कि मैं आपके रूप की एक अनुकृति बना लूँ, जिससे कि भविष्य में कभी मुझे उसके बिना न रहना पड़े। सूर्य किसी धुंधले दर्पण में प्रतिबिम्बित होने पर भी अपने ताप को छोड़ नहीं देता है।" राजा ने उत्तर दिया—"पहले तुम मुझे अपनी कला-कुशलता का एक नमूना दिखाओ; किन्तु इतना ध्यान रहे कि तुम मुझे किसी स्त्री का चित्र मत दिखलाना अन्यथा तुम्हारे लिये बहुत बुरा होगा।" चित्रकार ने बड़ी कुशलता से संसार के सभी देशों के चुने हुए चित्रों का एक संग्रह राजा के सामने प्रदर्शित कर दिया। उन्हीं चित्रों के बीच में उसने गुप्तरूप से एक स्त्री के चित्र को भी रख दिया था। एक-एक करके सभी चित्रों को उलटते-उलटते राजा के सामने सहसा वही चित्र आ गया और उसे देखकर वह तुरन्त ही मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

यह देखकर चित्रकार हँस पड़ा। उसने मंत्रियों से कहा—"रोग का निदान हो गया है, अब वैद्यराज को उनकी दक्षिणा दे दीजिए।" मंत्रियों ने उत्तर दिया—"पहले हमको यह विश्वास तो हो जाय कि रोगी पूर्णरूप से स्वस्थ हो गया है।" चित्रकार बोला—"इसका पता तो आपको बहुत शीघ्र ही चल जायगा। आप लोग महाराज की देखभाल कीजिए और उन्हें चैतन्यावस्था में ले आने का उपाय कीजिए, और देखते रहिए कि होश में आने पर वे मुझे अपने सामने न उपस्थित पाकर क्या कहते हैं। तब तक मैं कमरे से बाहर चला जाता हूँ।"

तदनन्तर मंत्रियों ने राजा के सेवकों को बुलवाया। उन्होंने आकर राजा के ऊपर तालपत्र से हवा की और उनके शरीर पर चन्दन से सुगन्धित जल छिड़कना प्रारम्भ कर दिया। फिर क्या था, राजा की चेतना लौट आई और वह अपने चारों ओर देखने लगा। जब उसे

चित्रकार कहीं न दिखाई पड़ा तो वह चिल्ला उठा—"चित्रकार ! ओ चित्रकार !!" मंत्रियों ने निवेदन किया—"श्रीमन्, वह तो चला गया ।" इतना सुनना था कि राजा की रंगत बदल गई और वाणी लड़खड़ाने लगी । उसने कहा—"यदि तुम लोगों ने चित्रकार को यहाँ से निकल जाने दिया होगा, तो मैं सूर्यास्त से पूर्व ही तुम सबको हाथियों से कुचलवा कर मरवा डालूँगा ।" यह सुनना था कि उन्होंने शीघ्र ही बाहर जाकर उस चित्रकार को ढूँढ निकाला और उसे पुनः राजा के सम्मुख उपस्थित कर दिया । चित्रकार राजा के चरणों पर गिर कर कहने लगा—"महाराज ! मुझे क्षमा कर दीजिए । मुझे दुःख है कि मेरे दुर्भाग्य से ही उस स्त्री का चित्र अन्य चित्रों में मिल गया था, जिसके कारण अब मेरा काल आ पहुँचा है ।" किन्तु राजा ने कहा—"हे भूत वर्तमान और भावी चित्रकारों के शिरोमणि ! तुम्हें यह समझना चाहिए कि उस चित्र को मुझे दिखलाकर तुमने मेरी जो भलाई की है, उससे मैं कभी उऋण नहीं हो सकता, तुम्हें अपना साम्राज्य दे डालने पर भी । इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह स्त्री पूर्व जन्म में मेरी रानी रही होगी, क्योंकि इस प्रकार की भावनाएँ निश्चय ही पूर्व जन्म के सम्बन्ध को सूचित किया करती हैं । अब तो तू मुझे यह बतला ही दे कि उसका पिता किस देश का राजा है ? ऐसा प्रतीत होता है कि जिस स्त्री का यह चित्र है उसकी सृष्टि स्वयं प्रजापति ने की है, क्योंकि उसके समान सौन्दर्य की कल्पना कोई अन्य बुद्धि तो कर ही नहीं सकती ।" यह सुनकर चित्रकार मुस्करा उठा और कहने लगा—"आप उस स्त्री को अपने मस्तिष्क से निकाल दीजिये और अब अधिक उसकी चिन्ता न कीजिये, अन्यथा मेरी असावधानी आपके अनिष्ट का कारण हो सकती है ।" किन्तु राजा ने कहा—"अरे चित्रकार ! अब बस कर । तू दो में से एक बात चुन ले । या तो तू मुझे यह बात बतला दे कि वह स्त्री कौन है और सोने से लद जा, अथवा ऐसा न करके तू बेड़ियाँ पहिनने को तैयार हो जा ।

और जब तक तू मुझे यह बतला नहीं देगा, तब तक तुझे अन्न और जल के बिना एक कालकोठरी में बन्द रहना पड़ेगा।"

चित्रकार ने कहा—"महाराज ! यदि इसका कोई चारा ही नहीं है और यदि आपके भाग्य में यही है, तो आपसे बतलाता हूँ कि वह चित्र नागराज के भाई की कन्या अनंगरागा का है। वह एक वन में एक महल में अकेली ही रहती है। यहाँ से वहाँ तक पहुँचने में दो मास का समय लग जाता है। उस राजकुमारी की सुन्दरता का थोड़ा-बहुत ज्ञान तो आपको अपने निजी अनुभव से ही हो गया है, क्योंकि उसके चित्रांकित सौन्दर्य से ही आप इतना प्रभावित हो उठे हैं। फिर भी क्या कोई चित्र किसी वास्तविक वस्तु की समता कर सकता है? उस राजकन्या को देख कर प्रत्येक व्यक्ति अनुरक्त हो जाता है। बहुत से व्यक्ति आपकी भाँति मूर्छित हो जाते हैं, और कुछ व्यक्ति तो मर भी गए हैं। परन्तु विधाता ने सौन्दर्य की इस अप्रतिम प्रतिमा को बनाते समय उसके हृदय को इतना हठी एवं कठोर बना दिया कि वह पुष्पधन्वा के उन सभी प्रयत्नों का उपहास करता रहता है, जिनसे वह उसे बींधना चाहता है। संसार के सभी भागों से आ-आकर विवाह के इच्छुकों ने उस राजकुमारी को प्राप्त करने का प्रयत्न किया, किन्तु अब तक उसने बड़ी घृणापूर्ण उदासीनता से ही उनका स्वागत किया है। इक्कीस दिनों तक वह विवाह के अभ्यर्थियों को इस शर्त पर भव्य आतिथ्य से रखती है कि प्रतिदिन वे उससे एक पहेली पूछा करें। यदि कोई विवाहेच्छुक ऐसी पहेली पूछ दे, जिसका उत्तर वह न दे सके, तो वह स्वयं ही पुरस्कार रूप में उसे प्राप्त हो जायगी। किन्तु नियत अवधि में विवाहेच्छुक को सफलता प्राप्त न होने पर, उसे उसका दास बनना पड़ेगा और तब उसके साथ वह अपने इच्छानुसार व्यवहार करेगी। अभी तक उससे कोई व्यक्ति ऐसी पहेली नहीं पूछ सका है, जिसका उत्तर वह न दे सकी हो, क्योंकि उसमें देवताओं की सी बुद्धिमत्ता है और वह सभी ज्ञानविज्ञान में पारंगत है। अब तक वह

ऐसे न जाने कितने प्रेमियों को भगा चुकी है, जिन्होंने उसे प्राप्त करने का प्रयास किया, किन्तु सफलता नहीं पाई। और कितनों को तो उसने अपना दास बना कर रख छोड़ा है। वह उनके सामने निर्दयतापूर्वक अपने उस सौन्दर्य का प्रदर्शन किया करती है, जो सदैव के लिए उन्हें अप्राप्य है। अब इन लोगों का जीवन पशुओं से भी निकृष्ट हो गया है। महाराज! मैंने इसीलिए आपको सावधान कर दिया कि कहीं आपकी भी वही गति न हो। आप बुद्धिमानी से काम लीजिये और अविलम्ब उसकी चिन्ता छोड़ दीजिये। मेरे विचार से संसार में किसी का भी जीवन उन मनुष्यों के समान दयनीय नहीं हो सकता, जिन्हें इस कारण चिरन्तन दुःख भोगना पड़ रहा है कि वे जिस वस्तु को प्राप्य समझते और उसका रात-दिन चिन्तन किया करते हैं किन्तु उसे वे प्राप्त नहीं कर सकते।"

सूर्यकान्त खिलखिलाकर हँस पड़ा और कहने लगा—"हे चित्रकार! तेरा विवेक वैसा नहीं है, जैसा चित्रकारी में तेरा कौशल है। इससे भी कहीं अधिक दुःखमय भाग्य उस व्यक्ति का होता है जिसे अपना पूरा जीवन किसी ऐसी वस्तु के लिए दुःख करते ही बिताना पड़ता है जो यदि वह साहस और संकल्प से काम लिये होता तो उसे प्राप्त हो गयी होती। इस सुन्दरी के उपभोग की आशा को कायरतापूर्वक छोड़ देने की अपेक्षा मैं यह अधिक पसन्द करूँगा कि मैं सदा उसके चिन्तन में ही मरता रहूँ।" तदुपरान्त राजा ने चित्रकार को तीन करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ देकर राजकुमारी का चित्र ले लिया और अपना चित्र बनाने की अनुमति देकर उसे विदा किया। उसने अपने मन्त्रियों से कहा—"आप लोग सब तैयारियाँ कीजिये, क्योंकि मैं आज ही रात को राजकुमारी अनंगरागा की खोज में निकल पड़ना चाहता हूँ।" मन्त्रियों ने परस्पर मन्त्रणा करके कहा—"निश्चय ही, यदि महाराज अपने उद्देश्य में सफल न हुए और लौटकर यहाँ न आए तो साम्राज्य का सर्वनाश हो जायगा; परन्तु वही स्थिति तब भी रहेगी जब वे यहाँ रहते हुए भी स्त्रियों के

सहवास से दूर रह कर निस्सन्तान रह जायेंगे। अतः उनका जाना ही अच्छा है, क्योंकि दोषों में से छोटा दोष ही श्रेयस्कर माना जाता है। इसके अतिरिक्त यह भी तो सम्भव है कि महाराज सफल ही हो जायें।"

उसी रात अधीरता की भयानक ज्वाला में जलते हुए उस राजा ने शासन-भार अपने मन्त्रियों के कन्धों पर डाल कर स्वयं अपनी प्रियतमा के चित्र को साथ ले, उसे पाने के लिये अपने भाग्य की परीक्षा के निमित्त प्रस्थान कर दिया। वह अपने साथ और किसी को नहीं ले जाना चाहता था, परन्तु जिस समय वह जाने की तैयारी करने लगा, उसके विदूषक सखा रसकोश ने उससे कहा—"श्रीमन्, क्या आप अकेले ही जायेंगे?" राजा ने उत्तर दिया—"हे मित्र! सम्भव है कि मुझे सफलता न मिले और मैं कभी लौट कर न आऊँ, तो मैं अपने साथ दूसरे लोगों को काल के गाल में क्यों घसीटूँ? मैं तो अकेले ही जाऊँगा।" रसकोश ने कहा—"महाराज! आप यह क्या कह रहे हैं? मुझे यहाँ छोड़कर आप जा कैसे सकते हैं? क्योंकि आपका आधा आत्मा जो आपके शरीर में रहता है, पहले ही राजकुमारी के पास जा चुका है, और आधा जो मेरे शरीर में रहकर आपकी सेवा के लिए सदा उद्यत रहता है, वह यहाँ रह जायगा। और ऐसी अवस्था में आप राजकुमारी को हरा भी कैसे सकेंगे? यदि आप अपने उद्देश्य में असफल ही रहे तब तो आप मेरे बिना और भी कुछ न कर सकेंगे; क्योंकि जब सम्पत्ति ही मित्र के बिना नीरस हो जाती है, तब विपत्ति का तो कहना ही क्या?" राजा ने कहा—"ऐसा ही सही, तो आओ हम लोग चल पड़ें।" किन्तु रसकोश ने कहा—"क्या मैंने आपसे कहा नहीं था कि आपका मन चंचल है? क्या आप विघ्नविनाशक विनायक की सहायता के बिना ऐसा विपत्तिजनक दुःसाहस कर सकते हैं? उनकी उपेक्षा करके कौन क्या पा सका?" राजा ने उत्तर दिया—"बात तो ठीक है। मैं अपनी उतावली में उनको तो बिलकुल भूल ही गया था।" और फिर वह इस प्रकार गणेश की स्तुति करने

लगा— 'हे गजवदन ! तुम्हारी जय हो, तुम सदैव नृत्य में अपने शुंडादंड को उठाये रहते हो। तुम्हारे सम्मुख सभी विघ्न-बाधाएँ उसी प्रकार से विलीन हो जाती हैं, जैसे प्रातः-कालीन सूर्य के सामने रात्रि का अन्धकार विलीन हो जाता है। भगवन् ! तुम्हारी जय हो। तुम्हारी सहायता से निर्बल व्यक्ति भी बलवानों पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। तुम्हारे बिना सम्पूर्ण ज्ञान मिथ्या हो जाता है, और सुबुद्धि दुर्बुद्धि बन जाती है। हे गजानन ! तुम्हारी जय हो। तुम्हारे लम्बे-लम्बे कान वायु में विजय पताका के समान लहराते रहते हैं।"

तदनन्तर वे दोनों अपनी यात्रा पर निकल पड़े। वे दोनों रात-दिन उस जङ्गल में विचरण करने लगे जो जङ्गली जानवरों, बन्दरों और भीलों से उसी प्रकार भरपूर था, जिस प्रकार सागर मणियों से भरपूर रहता है। अपनी चिन्ता में पड़ा हुआ राजा कई दिनों तक न कुछ बोला, न उसने कुछ खाया पिया। उसका जीवननिर्वाह केवल वायु और उस चित्र के आधार पर होता था, जिसका पान वह अपने नेत्रों से रात-दिन किया करता था।

एक दिन कदम्ब की सघन छाया में विश्राम करते हुए, राजा बहुत समय तक अपनी प्रियतमा के चित्र को ध्यानपूर्वक देखता रहा। सहसा उसका मौन भङ्ग हुआ और वह बोल उठा—"रसकोश ! मेरी प्रियतमा एक स्त्री है और अब तक स्त्री ही एक ऐसी वस्तु है, जिसके विषय में मैं बिलकुल अनभिज्ञ हूँ। मुझे बताओ तो कि स्त्री का स्वभाव कैसा होता है ?" रसकोश मुस्करा उठा और कहने लगा—" महाराज ! यह प्रश्न आप राजकुमारी से ही पूछने के लिए रख छोड़िये, क्योंकि यह एक जटिल प्रश्न है। वास्तव में नारी तो विचित्र तत्वों से बना हुआ एक अद्भुत प्राणी है। प्रसङ्गवश मैं आपको एक कहानी सुना रहा हूँ, उसे आप ध्यान से सुनिए।"

सृष्टि के आदि में प्रजाओं का निर्माण करते-करते जब त्वष्टा स्त्री का निर्माण करने बैठे, तो उन्होंने देखा कि अब उनके पास

कोई भी ठोस तत्व शेष नहीं रह गया, क्योंकि सारी सामग्री पुरुष के ही निर्माण में समाप्त हो चुकी थी। इस चिन्ता से व्यग्र त्वष्टा ने अपना चित्त एकाग्र करके यह किया कि उन्होंने चन्द्रमा की गोलाई ली, लताओं की वक्रता ली, लता-तन्तुओं की अनुरक्ति ली, घास की चंचलता ली, नरकुल की तनुता ली, फूलों की बहार ली, पत्तियों की लघिमा ली, हाथी के शुण्डादण्ड की क्रमसूक्ष्माग्रता ली, हरिण की चितवन ली, भ्रमर-पंक्ति की सघनता ली, सूर्यकिरणों की आनन्दोन्मत्तता ली, मेघों की रुलाई ली, वायु की चंचलता ली, खरहे की कायरता ली, मोर की अहम्मन्यता ली, शुकहृदय की नम्रता ली, वज्र की कठोरता ली, मधु की मधुरता ली, सिंह की क्रूरता ली, अग्नि की उष्णता ली, हिम की शीतलता ली, नीलकण्ठ की चहक ली, कोयल की कूक ली, सारस की छलना ली, चक्रवाक की अटूट दृढ़ता ली—और इन सब को एक में मिला कर नारी का निर्माण करके उन्होंने उसे मनुष्य को दे दिया। एक सप्ताह के बाद मनुष्य त्वष्टा के निकट आकर उनसे कहने लगा—"भगवन्! जिस प्राणी को आपने मुझे प्रदान किया है, उसने मेरे जीवन को दुःखी बना रखा है। मैं उसे आपको वापस करने आया हूँ। मैं तो उसके साथ रह ही नहीं सकता, क्योंकि वह निरन्तर बोलती रहती है। वह मुझे इतना खिझाता है कि मैं उसे सहन ही नहीं कर सकता। वह मुझे कभी अकेले नहीं रहने देती। उसे निरन्तर मेरी सजगता की आवश्यकता रहती है, जिससे मेरा सारा समय वही ले लेती है। वह तो बिना बात के चिल्लाती रहती है, और सदैव अकर्मण्य रहती है।" त्वष्टा ने 'एवमस्तु' कहकर स्त्री को वापस ले लिया। एक सप्ताह समाप्त हुआ। उसके बाद वह पुरुष पुनः त्वष्टा के पास जाकर कहने लगा—"जब से मैंने आपको वह प्राणी वापस दे दिया है, तब से मेरा जीवन सूना-सूना सा रहने लगा है। मुझे अब तक स्मरण है कि वह किस प्रकार मेरे सामने नाचती-गाती रहती थी, मुझे अपने कटाक्षों से

देखती थी, मेरे साथ क्रीड़ा करती थी और मेरा आलिङ्गन किया करती थी। वह देखने में अपूर्व सुन्दरी एवं कोमलाङ्गी थी। उसका हँसना ही मेरे लिए सङ्गीत बन जाता था। इसलिए आप कृपा करके उसे फिर मुझे दे दीजिये।" त्वष्टा ने 'तथास्तु' कह कर स्त्री को पुनः पुरुष को दे दिया। अभी केवल तीन दिन ही बीते थे कि वह पुरुष पुनः त्वष्टा के समीप जाकर कहने लगा—"हे प्रभु, मैं नहीं जानता कि क्या बात है। किन्तु अब तो मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि वह स्त्री मेरे लिए आनन्द नहीं, एक विपत्ति है। इसलिए आप कृपा करके इसे पुनः वापस ले लीजिये।" इस बार त्वष्टा ने कहा—"तू यहाँ से भाग जा, अब मैं कुछ नहीं कह सकता। जिस प्रकार भी हो, अब इसका प्रबन्ध तो तुझे ही करना होगा।" मनुष्य ने उत्तर दिया—"किन्तु मैं तो इसके साथ जीवित ही नहीं रह सकता हूँ।" "किन्तु तुम तो इसके बिना भी जीवित नहीं रह सकते हो"– त्वष्टा का उत्तर था। इतना कहकर त्वष्टा मनुष्य की ओर से मुख मोड़ कर अपने कार्य में लग गए। मनुष्य ने कहा—"समझ में नहीं आता कि अब किया क्या जाय, क्योंकि मैं न तो उसके बिना ही रह सकता हूँ, और न उसके साथ ही।"

रसकोश चुप हो गया उसने राजा की ओर देखा, वह बिलकुल मौन था और जानबूझ कर राजकुमारी के चित्र में ध्यानमग्न था।

इस प्रकार प्रतिदिन जंगल में भटकते और विश्राम करते अन्ततोगत्वा वे दोनों राजकुमारी अनङ्गरागा के भवन के निकट पहुँच ही गये।

पहला दिन

वृक्षों के ऊपर तक उठे हुए प्रासादाग्र, प्रातःकालीन सूर्य की किरणों में सोने की तरह चमक रहे थे। सहसा राजा सूर्यकान्त बोल उठा—"अरे मैं तो मर गया।" रसकोश ने कहा—"क्यों क्या बात है?" राजा ने उत्तर दिया—"हाय! रात दिन, सोते-चलते, मेरे

सामने सदैव मेरी प्रियतमा का ही चित्र आता रहता है, जिससे मुझे उसके अतिरिक्त किसी दूसरी वस्तु का ज्ञान ही नहीं रह गया है। यह हमारी यात्रा का अन्त और कठिनाइयों का आदि है। मुझे राजकुमारी से क्या कहना है, इसके विषय में मैं अभी तक कुछ सोच ही नहीं सका हूँ। उसका ध्यान ही जब इतनी दूर से मुझे ऐसा किंकर्तव्यविमूढ़ बना दे रहा है, तब उसका साक्षात् दर्शन तो मेरी सम्पूर्ण प्रज्ञा को ही नष्ट कर देगा। इस समय भी मेरी लगभग वही दशा है।" रसकोश ने कहा—"इसी ढंग से तो राजकुमारी ने अपने सभी प्रेमियों को धोखा दिया है। उसकी सुन्दरता का जादू उनकी बुद्धि को हर लेता है, और इस प्रकार वे लोग उसके शिकार बन जाते हैं। आप तो बड़े भाग्यवान् हैं, क्योंकि यद्यपि आपका एक अर्धांश शरीर से अलग है, तथापि आपका दूसरा अर्धांश आपके रिक्त पंजर की देख-रेख में लगा हुआ है। आप चिन्ता न कीजिये, जब राजकुमारी के सामने हम लोगों का परिचय कराया जाय तो आप उससे यह कह दीजियेगा कि आप मेरे मुख से ही बोलते हैं। बस, शेष मेरे ऊपर छोड़ दीजिये।" अब राजा निश्चिन्त हो गया। उसने अपने मस्तिष्क से सभी चिन्ताओं को बाहर निकाल दिया, वह पुनः अपनी प्रियतमा के ध्यान में मग्न हो गया।

चलते-चलते अन्त में वह लोग प्रासाद की सीमाओं में पहुँच गए। वहाँ इन्हें पहरेदार मिले, जिन्होंने इन लोगों के विषय में पूछताछ की। तत्पश्चात् राजकुमारी के निकट जाकर उन्होंने यह निवेदन किया कि महाराज सूर्यकान्त राजकन्या की मँगनी के लिए आए हुए हैं। राजकुमारी ने राजा के स्वागत के लिए कञ्चुकियों एवं अन्य सेवकों को भेजा। वे लोग महाराज को श्वेत संगमरमर से बने हुए एक आनन्दभवन में ले गए। वह एक ऐसी बाटिका में बना हुआ था, जिसमें एक झील थी और मणिनिर्मित स्नानागार थे। वहाँ पर मधुर-मधुर सुगन्धि छिटकाने वाले पुष्पों से लदे हुए छायादार वृक्ष सुशोभित

हो रहे थे; और उसमें असंख्य पक्षियों का संगीत हो रहा था। वहाँ उन लोगों ने अपना दिन तो किसी प्रकार व्यतीत किया, किन्तु राजा के पास राजकुमारी के चित्र के अतिरिक्त किसी वस्तु को देखने के लिए न तो नेत्र ही थे और न किसी अन्य बात को सुनने के लिए कान। वह तो उसी को देखने के लिए उत्कण्ठित हो रहा था।

सूर्यास्त हुआ। राजा सूर्यकान्त और रसकोश, राजकुमारी के प्रासाद में होकर सभाभवन में पहुँचे। भवन के नीलमणि-निर्मित फर्श पर राजकुमारी के चरण प्रतिबिम्बित हो रहे थे और उसकी दीवारों पर जड़े हुए रत्नों में असंख्य प्रदीपों का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था। वहाँ पहुँच कर उन्होंने अनङ्गरागा को देखा, वह स्वर्णसिंहासन पर बैठी हुई थी। हरी साड़ी और मोती जड़े हुए कञ्चुक पहिने, वह अभी-अभी सागर से निकली हुई लक्ष्मी के समान प्रतीत हो रही थी। भ्रमर-पंक्ति सी बड़ी-बड़ी आँखों, कजरारी पलकों और लाल-लाल ओठों से युक्त, उस राजकुमारी के उन्नत उरोजों से चन्दन की सुगन्धि फैल रही थी। उसकी क्षीण कटि स्वर्णमेखला से मण्डित थी, उसके मणिबन्ध में चूड़ियाँ और चरणों में नूपुर थे और उसके छोटे-छोटे चरणतल लाक्षारस से रञ्जित हो रहे थे। उसके काले केशों की त्रिवेणी नागिन-सी प्रतीत हो रही थी, जिसमें लगी हुई पद्मरागमणियाँ उस सर्पिणी के नेत्र थे और मरकतमणियाँ उसकी जिह्वा-सी दिखाई पड़ती थी। अपने लावण्य की आभा से दमकती हुई राजकुमारी ने तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से राजा की ओर देखा। इसके पूर्व कि राजा उससे कुछ कह सके, उसने उसकी ओर से अपना मुँह फेर लिया और बोली—"अपना उद्देश्य बतलाइये।" राजकुमारी की मोहक सुन्दरता के वज्र से आहत राजा अवाक् रह गया। वह सामने के आसन पर बैठा हुआ काँप रहा था और राजकुमारी को इस प्रकार देख रहा था, जैसे कोई पक्षी सर्प से भयभीत होकर उसकी ओर देखने लगता है। अब रसकोश आगे बढ़ा। वह राजकुमारी के चरणों पर दंडवत् लेट गया और कहने

लगा—"भद्रे, यह तुच्छ जन महाराज का मुख है, क्या इसको कुछ कहने की अनुमति है ?" राजकुमारी ने कहा—"कहिए, क्या बात है ?" रसकोश उठकर उसके सम्मुख खड़ा हो गया और कहने लगा—

"भद्रे ! प्राचीन काल में किसी देश में एक चार्वाक रहता था। उसका विवाह होने वाला था। जिस समय विवाह की तैयारियाँ हो रही थीं, उसी समय उसका एक मित्र उसके समीप आकर कहने लगा—'अपने विवाह की निर्विघ्न परिसमाप्ति के लिए गणेश की वन्दना कीजिये।' चार्वाक अवज्ञा के साथ हँस पड़ा और बोला—'प्रिय सुहृद, तुम मूर्ख हो। क्या मैं इतना भी नहीं जानता कि वेदों की रचना वञ्चकों और मूर्खों ने की है। उन्होंने याज्ञिक कार्यों का विधान केवल अपने लाभ के लिए किया है। देवताओं के सम्बन्ध में मूर्खतापूर्ण कथायें या तो पागलों के स्वप्न हैं या फिर वञ्चकों की जीविका के साधना और जिस गणेश के विषयमें तुम मुझसे कह रहे हो, उससे लाभ ही क्या है ? पहले तो हाथी के शिर से युक्त कोई मनुष्य हो ही नहीं सकता; और यदि हो भी तो सफलता से उसका क्या सम्बन्ध ? सफलता की आशा तो केवल वही कर सकता है, जो सोच-समझ कर अपनी योजनाएँ बनाता है और बुद्धिमानी से उन्हें कार्यान्वित करता है। दूर रहे तुम्हारा गणेश, मैं अपनी सफलता का निश्चय स्वयं कर लूँगा।'

उसकी इस बात को सुनकर भगवान् गजानन अपनी सूंड़को हिलाते हुए मन ही मन मुस्कराने लगे। चार्वाक अपनी तैयारियाँ करता रहा। जब सब कुछ ठीक हो गया और शुभ दिवस का निश्चय हो गया तब गणपति ने एक स्वेच्छाचारिणी गौ से कहा—'हे गौ माता, जाओ और अपना पवित्र गोबर चार्वाक के द्वार पर डाल आओ।' गौ चली गई और उसने वैसा ही किया। जब चार्वाक अपने घर से निकला तो उसका पैर गोबर पर पड़ गया और वह फिसल कर गिर पड़ा, जिससे उसका पैर टूट गया। लोग उसे उठाकर अन्दर ले गए और उपचार

करने लगे किन्तु उसके पैर के ठीक होने से पहले ही उसकी वधू की मृत्यु हो गई ।

तब उसका मित्र पुनः उसके पास आया और कहने लगा—'देखा, गणपति-पूजन की उपेक्षा करने से क्या होता है ?' किन्तु चार्वाक ने उत्तर दिया—'रहने भी दो, तुम तो मूर्ख हो। यह कौन पहले से जान सकता था कि एक सीधी-सादी गाय आकर मेरे द्वार पर गोबर डाल जायगी ? इससे गणपति का क्या सम्बन्ध ? क्या वह संसार की सब गायों के मल की ही देखभाल और उसका निर्देशन करता है ? तब तो यह बड़ी अच्छी बात है।' ऐसा कहते हुए उसने पुनः अपने मित्र को बोलने का अवसर न दे उसे बाहर निकाल दिया। उसका पैर ठीक होने पर उसे एक दूसरी वधू मिल गई और वह दूसरे विवाह की तैयारियों में लग गया। इस बार उसने कुछ झाड़ू लगाने वालों को ठीक कर लिया जो उसके आगे-आगे चलते थे और उसके सामने की भूमि को स्वच्छ कर दिया करते थे। नियत दिन आने पर गणपति ने एक ऐसी गौ को बुलाया जो दैनिक बलि को खाया करती थी। गणपति ने उस गौ से कहा—'गौ माता ! आज एक चार्वाक का विवाह होने जा रहा है। वह एक तोरण के नीचे होकर जायगा, जो उसके जाने के मार्ग पर बना हुआ है। तोरण पर मेरी एक प्रस्तर मूर्ति है, जो बहुत पुरानी है। वर्षा और ग्रीष्म ने उसे और भी जीर्ण बना दिया है, जिससे उसमें दरारें पड़ गई हैं और वह गिरने ही वाली है। तुम देखती रहना और जब चार्वाक तोरण के नीचे से जाने लगे तब तुम मेरे ऊपर बैठ जाना और मैं गिर पड़ूँगा।' गौ चली गई और अवसर देखकर वह गणपति की प्रस्तर मूर्ति पर बैठ गई। जैसे ही चार्वाक नीचे से निकला वह प्रस्तर मूर्ति उसके ऊपर गिर पड़ी और उसकी भुजा टूट गई। लोग उसको उठाकर पुनः उसके घर ले गए। इसके पूर्व कि उसकी भुजा ठीक हो, उसकी दूसरी वधू की भी मृत्यु हो गई।

चार्वाक का मित्र पुनः उसके पास आया और कहने लगा—'यही

तुम्हारी बुद्धिमत्ता है ? मैंने तुमसे क्या कहा था ? क्या अब भी तुम्हारी समझ में नहीं आया कि वह कौन है जो तुम्हारे उद्योगों को विफल कर देता है ?' चार्वाक क्रोध से आग बबूला होकर बोला–'बस करो, तुम बहुत बक चुके। मैं गणपति के बिना भी विवाह कर लूँगा। किन्तु इस दुःखदायी नगरी के विषय में पहले से क्या कहा जाय जिसकी गायें मार्गों को गन्दा करती फिरती हैं और जिसके भवन ऐसे जर्जर हैं कि अपने आप गिरते रहते हैं ? मैं इस प्रकार की दुर्घटना की पुनरावृत्ति को रोकने का प्रबन्ध कर लूँगा।' चार्वाक ने स्वस्थ होकर दूसरी वधू खोज ली और वह फिर अपने विवाह की तैयारियाँ करने लगा। वधू के घर जाने के लिए उसने नगर के प्राचीर से बाहर एक चक्करदार मार्ग बना लिया, जिससे उसे नगर की सड़कों से होकर जाना ही न पड़े। उसी दिन प्रातःकाल गणपति इन्द्र के पास पहुँचे और बोले—'हे वज्रधर ! आज एक चार्वाक का विवाह होने जा रहा है। वह एक ऐसे जलमार्ग से होकर जायगा, जो अब सूख गया है। आप मुझे अपने वर्षा के मेघों को दे दीजिये, जिससे मैं उस कृतघ्न को कुछ शिक्षा दे सकूँ।' इन्द्र ने मेघों को भेज दिया। उन्होंने पहाड़ियों पर खूब मूसलाधार वर्षा की। जब चार्वाक जलमार्ग, के ऊपर से जाने लगा तो सहसा नदी बढ़ गई और बड़े वेग से उतरती हुई चार्वाक को बहा ले गई और उसे डुबा दिया।

यह देखकर गणपति मुस्कराने लगे, किन्तु सहसा वे जोर को रो पड़े।

राजकुमारी ! अब आप मुझे बतलाइये कि विघ्नविनायक के हँसने और रोने का कारण क्या था ?" इतना कहकर रसकोश मौन हो गया। राजकुमारी ने उत्तर दिया—"गणपति हँसे थे उस दुःखी कृतघ्न की दुष्टता, अन्धता और धृष्टता को सोच कर, किन्तु जैसे ही उन्हें उस दुष्ट को प्राप्त होने वाले दण्ड का स्मरण हो आया वैसे

ही करुणाभिभूत हो उठे। उन्हें ऐसे ही अन्य लोगों का भी ध्यान हो आया जो अपने कुकर्मों से अपने दूसरे जन्मों और परलोक के लिये भयानक विपत्ति की सृष्टि कर लेते हैं; और यही सोचकर वे रो पड़े।"

ऐसा कहते-कहते राजकुमारी उठ खड़ी हुई। वह राजा की ओर हाथ हिलाती हुई बाहर चली गई और उसी के साथ राजा का हृदय भी चला गया। राजा और रसकोश अपने-अपने कक्ष को चले गए।

दूसरा दिन

राजा सूर्यकान्त ने रसकोश से कहा—"प्रिय मित्र! यद्यपि राजकुमारी ने तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दे दिया, और तुमने मेरा एक दिन नष्ट कर दिया है, फिर भी मैं तुम्हें केवल इसलिए क्षमा कर रहा हूँ कि राजकुमारी बाहर जाते-जाते मेरी ओर अपना हाथ हिला गई है। उसका हिलता हुआ हाथ फूलों से लदी और समीर में झूमती हुई एक लता के समान प्रतीत हो रहा था। यदि यह चित्र मेरे पास न होता तो कल तक उसके वियोग के दुःख को सहन कर सकना मेरे लिए असम्भव ही हो जाता।" इसके बाद चित्र को देख-देखकर राजकुमारी की सुन्दरता का पान करते हुए, उन्मत्तता की स्थिति में राजा ने रात्रि व्यतीत की। उसने कहा—"निश्चय ही वह कलाकार अपनी कला में बड़ा कुशल था। यह चित्र नहीं, अपितु एक दर्पण है। इसके ओठों पर ठीक वही अवज्ञा झलक रही है।" सूर्योदय होते-होते, राजा भी उठ गया। पुनर्मिलन के क्षण की अभिलाषा में रसकोश के साथ उसने वाटिका में दिन व्यतीत किया। सूर्यास्त के उपरान्त वह फिर दरबार में गया। वहाँ जाकर उसने राजकुमारी को देखा, वह लाल वस्त्र पहने हुए सिंहासन पर विराजमान थी। उसके कंचुक में मोती जड़े हुए थे और वह मुकुट और अन्य आभूषण धारण किए हुए थी। जैसे ही राजकुमारी ने राजा की ओर देखा, वह काँप उठा। उसके सौन्दर्य को देख, उस पर मुग्ध होकर वह विवश-सा

आसन पर गिर पड़ा। तब रसकोश आकर राजकुमारी के सामने खड़ा हो गया और कहने लगा—

"भद्रे! एक समय धर्मासन नामक राजा के एक गाँव में एक वृद्ध ब्राह्मण रहता था। उसके तीन पुत्र थे। उन्नीस गायों के अतिरिक्त इस संसार में उसका कुछ भी नहीं था। जब वह मरने लगा तो उसने अपने पुत्रों को पास बुलाकर कहा—'मेरे बेटो! मैं काल के गाल में हूँ। इसलिए मैं जो कहना चाहता हूँ, उसे ध्यान से सुनो। मेरे पास तुम्हें देने के लिए केवल ये गाएँ हैं। तुम लोग आपस में इनका विभाजन इस प्रकार से करना कि तुममें से ज्येष्ठ को आधी गायें मिलें, उससे छोटे को चौथाई और सबसे छोटे को कुल गायों का पाँचवाँ भाग। जो गाय शेष रहे, उसे तुम तीनो मिलकर खा लेना। यदि तुम लोग ऐसा न करोगे तो तुम्हें गाएँ राजा को दे देनी होंगी और तुम लोगों को मेरी अन्तिम इच्छा पूरी न करने का अभिशाप भोगना पड़ेगा।' इतना कहकर वृद्ध ब्राह्मण मर गया। पुत्रों ने विधिवत् उसका दाह-संस्कार कर उसकी अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न की।

उसके पश्चात् वे लोग सम्पत्ति का विभाजन करने के लिए एकत्र हुए। ज्येष्ठ भाई ने कहा—'आधी अर्थात् साढ़े नौ गायें मेरी हैं।' उससे छोटा भाई बोला—'एक चौथाई अर्थात् पौने पाँच गायें मेरी हैं।' तदनन्तर सबसे छोटे भाई ने कहा—'इन गायों का पाँचवाँ भाग अर्थात् तीन पूरी गायें और शेष चार गाय के पाँच भागों में से एक भाग मेरी सम्पत्ति हैं।' इस पर ज्येष्ठ भाई बोला—'किन्तु यह सब गाएँ मिलाकर अठारह से कुछ अधिक हुईं। अन्तिम गाय का कुछ अंश शेष रह जायगा, जिसे हम लोगों को खाना पड़ेगा। किन्तु ब्राह्मण के लिए एक तो गोमांस खाना सम्भव ही नहीं है, फिर यह भी कैसे संभव है कि हम एक गाय के विभिन्न अङ्गों को खा भी लें और वह जीवित भी बनी रहे? लेकिन अब होना क्या चाहिए? यदि हम लोग अपने-

अपने भाग को नहीं ग्रहण करेंगे तो सभी गायें राजा की हो जायँगी। और हम लोगों को पिताजी का अभिशाप लगेगा। आखिर पिताजी ने हम लोगों को जो इस धर्म संकट में डाल दिया है उसका अभिप्राय क्या है ?' वे लोग इसी प्रकार आपस में विवाद करते रहे। दिन बीत गया, किन्तु उनकी कठिनाई का अन्त नहीं हुआ। उसके बाद भी रात भर उनका वाद-विवाद चलता रहा, किन्तु समाधान कुछ भी नहीं निकला।

राजकुमारी ! आप ही बतलाइये कि यह समस्या किस प्रकार सुलझे कि तीनों भाई, उनके पिता और राजा समान रूप से सन्तुष्ट हो सकें।" इतना कहकर रसकोश मौन हो गया। राजकुमारी नतमस्तक होकर क्षण भर के लिए कुछ विचार करने लगी। तदुपरान्त वह सिर उठाकर बोला—"ये सभी भाई एक और गाय उधार ले लें। तब बीस गायों में से सबसे बड़ा भाई आधी अर्थात् दस गाँए ले ले, उससे छोटा एक चौथाई अर्थात् पाँच गायें ले ले और सबसे छोटा कुल गायों का पाँचवाँ भाग अर्थात् चार गायें ले ले। तब वे उधार ली हुई गाय वापस कर दें। इस प्रकार से उन्नीस गायों का विभाजन हो जायगा और एक भी गाय शेष नहीं रहेगी। तीनों भाइयों के पिता भी सन्तुष्ट हो जायँगे, तीनों भाइयों को पहले विभाजन से अधिक गायें भी मिल जायेंगी और अन्ततोगत्वा राजा को भी प्रसन्नता होगी, क्योंकि वह एक न्यायप्रिय राजा है और ऐसे राजा के लिए इससे अधिक अप्रसन्नता की क्या बात हो सकती है कि उसके राज्य में ब्राह्मणजन गोवध करके उसका मांस खायें अथवा पिता के आदेशों का उल्लंघन करें। यह अवश्य है कि ऐसी अवस्था में गायें राजा को न मिलेंगी; किन्तु ऐसा राजा तो इस परिस्थिति में उन्नीस क्या दस लाख गायों से भी हाथ धोने को तैयार हो जायगा।"

इतना कहने के बाद राजकुमारी जाने के लिये उठ खड़ी हुई और राजा की ओर एक दृष्टि डालती हुई बाहर चली गई, और उसके

साथ ही चला गया राजा का हृदय भी । राजा और रसकोश अपने-अपने कक्ष को लौट आये ।

तीसरा दिन

राजा ने रसकोश से कहा—"प्रिय मित्र ! यह सत्य है कि राजकुमारी ने तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे दिया । किन्तु एक दिन तो नष्ट ही हो गया । फिर भी जाते-जाते वह मेरी ओर एक दृष्टि डाल गई है, इसलिए मैं तुम्हें क्षमा कर सकता हूँ । ओह ! वह दृष्टि मेरे सन्तप्त हृदय के लिए उतनी ही शीतलता प्रदान करने वाली थी, जितनी शीतलता सूखी और तृषित पृथ्वी को जल बिन्दुओं से प्राप्त होती है । यदि यह चित्र मेरे पास न होता तो मैं प्रातःकाल तक भी तो जीवित न रह सकता ।" राजा ने इसी प्रकार विलाप करते-करते, उत्सुकता के साथ अपनी प्रियतमा के चित्र को देख-देख कर रात बिता दी । सूर्योदय के साथ-साथ वह उठ गया और पुनर्मिलन के क्षण की प्रतीक्षा में रसकोश के साथ वाटिका में घूमते-घूमते उसने दिन भी काट दिया । सूर्यास्त होने पर वे पुनः सभा-भवन में जा उपस्थित हुए । वहाँ उन्होंने एक सिंहासन पर बैठी हुई राजकुमारी को देखा । वह पीले वस्त्र पहिने थी और उसके कंचुक, मुकुट और आभूषणों में रत्न जड़े हुए थे । वह निरन्तर राजा की ओर देखती रही । राजा भी अपनी प्रियतमा की ओर देखते हुए मन्त्र-मुग्ध की भाँति चुपचाप आसन पर गिर पड़ा । रसकोश आगे बढ़कर राजकुमारी के सम्मुख खड़ा हो गया और कहने लगा—

"भद्रे ! प्राचीनकाल में एक राजा था । वह ज्वर से मर गया । उसके एक बहुत छोटा बालक था जो न तो बोल सकता था और न चल ही सकता था । राजा का एक भाई था जो स्वयं राज्य को हड़पना चाहता था । इस कुचक्र को कार्यान्वित करने के अभिप्राय से उसने राजकुमार को अपने रास्ते से हटा देना ही उचित समझा ।

उसने सोचा—'इसमें कठिनता नहीं होगी, क्योंकि यह तो केवल एक शिशु है, जिसे हजारों उपायों से मारा जा सकता है।'

यह सोचकर उसने बच्चे के सेवकों को भारी उत्कोच देकर इस बात के लिए तैयार कर लिया कि वे उसे कमरे में अकेला छोड़ दें। बच्चे को मारने के लिए उसने एक हत्यारे को किराये पर ठीक कर लिया। हत्यारे को महल के एक गुप्त स्थान में छिपाकर उसने कहा—'जब तुम बच्चे को अकेला देखना तब राजा के कक्ष में जाकर उसे मार डालना।' हत्यारा राजपूत जाति का था, जो अभी-अभी नगर में आया था। उसे यह नहीं ज्ञात था कि यह राजा कौन है? पारितोषिक की आशा से वह नियत समय पर राजा के कक्ष में पहुँच गया। वहाँ उसे फल से खेलते हुए शिशु के अतिरिक्त कोई भी नहीं दिखाई पड़ा। जैसे ही हत्यारे ने कमरे में प्रवेश किया, वह फल बच्चे के हाथ से ढुलक कर हत्यारे के पैरों के पास चला गया। छोटे राजा ने हाथ फैलाकर 'भों, भों' रोना आरम्भ कर दिया। हत्यारे ने फल को उठाकर बच्चे के पास फेंक दिया जिससे वह खिलखिलाकर हँस पड़ा और तालियाँ बजाने लगा। वे दोनों इसी प्रकार फल से खेल रहे थे कि रक्षकों ने आकर हत्यारे को देख लिया। जब उन्होंने हत्यारे से पूछा कि तुम कौन हो, तो उसने उत्तर दिया—'मैं अपने स्वामी के पास से राजा के लिए एक समाचार लाया हूँ।' यह सुनकर वे हँस पड़े और कहने लगे—'राजा तो कब का मर चुका है, अब तो यही राजा है।' हत्यारा भौचक्का रह गया और बोला—'तब तो मैं अभी लौटकर अपने स्वामी से यह समाचार बतलाऊँगा, क्योंकि जो बोल तक नहीं सकता, उसे मैं क्या संदेश दूँ।' अंग-रक्षकों ने उसे जाने की अनुमति दे दी। हत्यारा बाहर आया और अपने प्राणों के भय से उसने अविलम्ब उस नगर को ही छोड़ दिया।

जब राजा के भाई ने देखा कि उसकी योजना विफल हो गयी है

तो उसने डाकुओं के एक समूह को ही किराये पर रख लिया। उचित अवसर देखकर उसने उन डाकुओं को उस मार्ग पर नियुक्त कर दिया जो मन्दिर को जाता था, और कहा—'इस मार्ग से होकर एक शिशु जायगा। वह अच्छे-अच्छे वस्त्र पहने होगा, रत्नजटित आभूषणों से विभूषित होगा और उसके साथ सेवक भी होंगे। उन पर आक्रमण करके उन्हें लूट लेना और यदि चाहो तो उन्हें मार भी डालना, किन्तु यह ध्यान रहे कि बचा भी मार डाला जाय।' वे डाकू अभी मार्ग में प्रतीक्षा ही कर रहे थे कि बालक राजा के आभूषणों से आकृष्ट होकर दूसरे डाकुओं ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने बालक राजा के सभी सेवकों को मार डाला, किन्तु किसी प्रकार एक सेवक जीवित रह गया जो नंगा ही वहाँ से भाग खड़ा हुआ। डाकुओं ने शिशु राजा के पास जो कुछ था उसे ले लिया, किन्तु उसे जीवित छोड़ दिया। उन्होंने कहा—'इसे जीवित रहने दिया जाय, क्योंकि यह किसी को कुछ भी बतला नहीं सकता।' ऐसा कहकर वे शीघ्रता से भाग गए। उसके पश्चात् शिशु राजा का वह भगोड़ा सेवक चुपचाप पीछे लौट आया, बच्चे को मार्ग में देखकर उसे उठा लिया और कपड़े में लपेट कर घर ले गया। वह उसी गिरोह के पास से होकर गया जो बालक राजा को मारने की प्रतीक्षा में था। उसे भिखारी समझकर, किसी ने भी उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। इस प्रकार बच्चा दूसरी बार भी जीवित बच गया।

तदुपरान्त राजा के भाई ने एक रसोइये को उत्कोच देकर ठीक किया। उसने बालक राजा के दूध में हलाहल घोल दिया, और यह विषयुक्त दूध उसे मणियों के एक कटोरे में दिया गया। उसने कटोरे को दोनों हाथों में लेकर अपने मुँह से लगाया और दूध को पीने ही जा रहा था कि इतने में उसके सामने खड़े हुए एक सेवक ने छींक दिया। शिशु राजा के हाथ से कटोरा गिर पड़ा और वह आनन्द में मग्न हो चिल्ला कर तालियाँ बजाने लगा। भूमि पर गिरकर कटोरा

चूर-चूर हो गया और उसमें रखा हुआ दूध धरती पर गिरकर फैल गया। इस प्रकार वह तीसरी बार भी बच गया। इसके पूर्व कि राजा का भाई कोई दूसरा षड्यन्त्र रच सके, वह स्वयं ही एक क्षत्रिय द्वारा मार डाला गया, जिसे उसने पहले कभी अपमानित किया था।

राजकुमारी! तुम्हीं बताओ कि उस दुष्ट की उस बालक के विरुद्ध कोई भी योजना सफल क्यों न हो सकी, जबकि वह केवल एक शिशु मात्र था?" इतना कहकर रसकोश चुप हो गया। राजकुमारी ने कहा—"यह उस बालक का शैशव ही था, जिसने राजा के भाई को असफल कर दिया। भूमि पर पड़ा हुआ एक साधारण पत्थर तिजोरियों में भलीभाँति सुरक्षित बहुमूल्य रत्नों से कहीं अधिक सुरक्षित रहता है, क्योंकि उसका कोई मूल्य नहीं होता और इसलिए वह किसी के लोभ को उत्तेजित नहीं करता। इसी प्रकार यदि कोई इतना दुर्बल हो कि उस पर प्रहार करने की बात कोई सोच ही न सके तो उसकी दुर्बलता ही उसकी इतनी सबल रक्षा करती है जितनी सहस्त्र रक्षक भी अनेक शत्रु वाले व्यक्ति की नहीं कर पाते। विष का अभाव ही सबसे बड़ी विषघ्न औषधि है; सौन्दर्य का अभाव ही सबसे बड़ा सद्‌गुण है; शत्रुओं का अभाव ही सबसे बड़ी दुर्गरचना है; और एक बच्चे की असहायावस्था ही उसका सबसे सशक्त रक्षक है। कोमल कमल का भी कहीं कोई शत्रु हुआ है?"

जब राजकुमारी इतना कह चुकी तब वह उठकर महाराज की ओर देखती हुई बाहर निकल गई, और उसके साथ ही चला गया राजा का हृदय भी। फिर राजा और रसकोश अपने-अपने कक्ष को वापस चले गये।

चौथा दिन

राजा ने रसकोश से कहा—"प्रिय मित्र! राजकुमारी ने पुनः तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे दिया, और अब तीन दिन बीत गए।

फिर भी राजकुमारी जाते-जाते मेरी ओर देख गई है, इसलिए मैं तुम्हें स्वेच्छा से क्षमा कर रहा हूँ। अरे, उसने तो मेरे हृदय को ऐसा फँसा रखा है जैसे वह किसी पाश में बँधा हुआ हो। यदि मेरे पास उसका यह चित्र न होता तो उसके वियोग में मुझे प्रश्न के बाद का दिन ही देखने को न मिलता।" राजकुमारी की मधुर स्मृति में उसने सारी रात काट दी। निरन्तर चित्र की ओर देखते-देखते वह निद्रा का वैरी बन गया। सूर्योदय होते-होते वह फिर उठ खड़ा हुआ और रसकोश तथा वाटिका की सहायता से उसने जैसे-तैसे दिन भी बिता दिया। सूर्यास्त होने पर वे पुनः सभा-भवन में गए। वहाँ उन्होंने राजकुमारी को देखा, वह एक सिंहासन पर बैठी हुई थी। उसने काले रंग के वस्त्र धारण किए थे और उसके कंचुक, मुकुट और अन्य आभूषणों में नीलम पिरोये हुए थे। उसने करुणापूर्वक राजा की ओर देखा। राजा काँपने लगा और आसन पर गिर पड़ा। उसकी वाणी मूक थी और राजकुमारी की सुन्दरता के जादू ने उसे मन्त्र-मुग्ध कर रखा था। रसकोश ने राजकुमारी के सामने आकर पुनः कहना प्रारम्भ किया—

"भद्रे! प्राचीन काल में एक नगर में ब्राह्मण जाति के दो जुड़वाँ भाई रहते थे। उनके नाम थे बिम्ब और प्रतिबिम्ब। मैं तो समझता हूँ कि उनमें से एक का निर्माण करने के उपरान्त दूसरे का निर्माण करने के लिए स्रष्टा जल में चले गए होंगे। उन भाइयों में जितनी समता थी उतनी समता चन्द्रमा और जल में पड़ने वाले उसके प्रतिबिम्ब में भी नहीं है, न तो उतनी समता एक शाखा पर लगी हुई दो पत्तियों में ही है। जब वे दोनों बच्चे थे तब उनमें भेद को बतलाने वाले उनके ताबीज़ ही थे, जो केवल इसी उद्देश्य से उनके गले में बाँध दिए गए थे। जैसे-जैसे वे दोनों बढ़ते जाते थे, उनके देखने वालों को ऐसा प्रतीत होता था कि उनके नेत्र परस्पर प्रतिद्वन्द्वी हो गए हैं, क्योंकि वे दोनों एक ही वस्तु के दो भिन्न-भिन्न प्रतिबिम्ब बनाया करते हैं। उनकी बाह्य आकृतियों की भाँति उनकी ध्वनियाँ और मानसिक

प्रवृत्तियाँ भी समान थीं। त्वचा से लेकर हृदय के अन्तरतम स्थान तक उनके अणु-अणु में समानता व्याप्त थी।

एक बार की बात है कि वसन्तोत्सव के अवसर पर बिम्ब ने एक युवती को देखा। उसी क्षण उस युवती ने भी बिम्ब की ओर देखा। तुरन्त ही कामदेव ने दोनों के कटाक्ष रूपी अस्त्रों की सहायता से दोनों के हृदयों में स्थान कर लिया। उसके परिवार एवं निवासस्थान का पता लगा कर बिम्ब सप्ताह में तीन दिन उससे मिलने के लिए जाने लगा। अपने आनन्दातिरेक और अपनी प्रेयसी की असाधारण सुन्दरता के अभिमान से वह आपे में न रह सका और न वह अपने सौभाग्य के रहस्य को ही गुप्त रख सका। उसने सारी कथा अपने भाई प्रतिबिम्ब से कह दी और उपयुक्त अवसर पाकर उसे अपनी प्रियतमा को दिखा भी दिया। किन्तु उसकी प्रियतमा को कुछ भी ज्ञात नहीं हुआ कि वह क्या कर रहा है। अपने भाई का प्रतिरूप होने के कारण प्रतिबिम्ब भी अपने भाई की भाँति उस युवती पर अनुरक्त हो गया। प्रेम को सम्मान का ध्यान ही कहाँ रहता है? अब वह भी बिना किसी हिचक के सप्ताह में तीन दिन उससे मिलने के लिए जाने लगा। दोनों में कोई भेद न कर सकने के कारण युवती उसे ही बिम्ब समझने लगी। अब तो वह और भी प्रसन्न थी, क्योंकि अब उसे अपने प्रियतम का सहवास पहले से दुगुना प्राप्त हो रहा था।

कुछ समय इसी प्रकार व्यतीत हो गया। एक बार संयोगवश वियोग को सहन न कर सकने के कारण बिम्ब अपनी प्रियतमा से मिलने उसी दिन पहुँच गया, जिस दिन उसका भाई जाया करता था। वहाँ उसने प्रतिबिम्ब को देखा, जो उसके पहले ही से वहाँ आ गया था। प्रतिबिम्ब शय्या पर पड़ा सो रहा था और उसकी प्रेयसी उस पर ताड़-पत्र के पंखे से हवा कर रही थी। जैसे ही युवती ने बिम्ब को वहाँ आया हुआ देखा, वह आश्चर्य और भय से चिल्ला उठी, जिससे प्रतिबिम्ब

की नींद टूट गई। वह दोनों की ओर आश्चर्य से देख ही रही थी कि बिम्ब प्रतिबिम्ब की ओर दौड़ पड़ा। वह ईर्ष्या से भरा हुआ था और क्रोध से चिल्ला रहा था। प्रतिबिम्ब ने भी वैसा ही किया। एक दूसरे से गुत्थमगुत्था करते-करते वे भूमि पर लुढ़कने लगे। अभी वे लड़ ही रहे थे और एक दूसरे को पैरों से मार रहे थे कि युवती की चिल्लाहट को सुनकर राजकर्मचारी अन्दर आ गए। उन्होंने दोनों को अलग कर दिया और युवती सहित उन्हें लेकर न्यायाधिकारी के सामने प्रस्तुत किया। बिम्ब ने कहा—'यह पुरुष मेरा भाई है, किन्तु इसने मेरी प्रेयसी को मुझसे चुरा लिया है।' प्रतिबिम्ब ने प्रतिवाद किया—'नहीं यह मेरी है, चोर तो तुम हो।' बिम्ब ने चिल्ला कर कहा—'मैं तो पहले से ही इसके पास आता था, दुराचारी तुम हो।' इस पर प्रतिबिम्ब ने उसके शब्दों की ही पुनरावृत्ति कर दी। न्यायाधिकारी ने युवती से कहा—'इन दोनों में से तुम्हारा प्रेमी कौन है।' किन्तु युवती ने उत्तर दिया—'श्रीमन्, कौन क्या है—यह बतलाने में मैं असमर्थ हूँ। मुझे तो आज तक यही पता नहीं था कि ये दो भिन्न पुरुष हैं।'

राजकुमारी! अब आप ही बतलाइये कि न्यायाधिकारी उन दोनों में भेद कैसे करे?" इतना कह कर रसकोश चुप हो गया। तब राजकुमारी बोली—"न्यायाधिकारी दोनों को अलग-अलग ले जाय और उनसे पूछे कि किस परिस्थिति में उन्होंने सर्वप्रथम राजकुमारी को देखा था। उन दोनों में जो धूर्त है उसको तो केवल इतना ही ज्ञात होगा कि उनका मिलन वसन्तोत्सव पर हुआ था, किन्तु वह दृष्टि जिसने उसे देखा था, उसका स्मरण करनेवाले हृदय की सहायता से उन कानों को दोषी ठहरा ही देगी, जिसने उसके विषय में केवल सुना ही होगा।"

ऐसा कहते हुए राजकुमारी उठ खड़ी हुई और राजा की ओर मुस्कराती हुई बाहर निकल गई; और अपने साथ ही ले गयी महाराज का हृदय भी। फिर राजा और रसकोश अपने-अपने कक्षों को लौट गए।

पाँचवां दिन

राजा ने रसकोश से कहा—"प्रिय मित्र ! यद्यपि मेरी रानी तुम्हारे प्रश्नों को ताड़ गई है, और अब चार दिन हो भी गए हैं, तथापि मैं तुम्हें क्षमा कर रहा हूँ। क्योंकि जाते-जाते भी वह मेरी ओर देखकर मुस्करा गई है। अरे, उसने अन्धकार से पूर्ण मेरे आत्मा को उसी प्रकार देदीप्यमान कर दिया था, जिस प्रकार चाँदनी वन-पथ को आलोकित कर दिया करती है। किन्तु उसके अदृश्य होते ही मेरे हृदय में पुनः अन्धकार छा गया है। यदि मेरे पास यह चित्र न रहता तो मैं अवश्य ही प्रातःकाल तक मर जाता।" फिर चित्र को देखते-देखते उसने अत्यन्त अधीरता से रात बिता दी। तदुपरान्त सूर्योदय होने के साथ ही वह उठ पड़ा, और उसने रसकोश और वाटिका की सहायता से दिन व्यतीत किया। सूर्यास्त होने पर वे दोनों पुनः सभाभवन में उपस्थित हुए। वहाँ उन्होंने राजकुमारी को देखा, वह पीले-लाल वस्त्र धारण किए हुए सिंहासन पर बैठी थी। उसके कंचुक, मुकुट और आभूषणों में नीलम जड़े हुए थे। उसने राजा को देखकर अपनी आँखें नीची कर लीं। राजा का हृदय धड़क रहा था और वह राजकुमारी की सुन्दरता से मन्त्र-मुग्ध होकर चुपचाप शय्या पर पड़ा हुआ था। रसकोश आगे बढ़ कर राजकुमारी के सामने खड़ा हो गया और कहने लगा—

"भद्रे ! प्राचीन समय में एक राजा था। उसने एक पड़ोसी राजा के ऊपर आक्रमण कर दिया और उसके साथ घमासान युद्ध किया। उसकी सेना में एक क्षत्रिय था। उसने सारे दिन लड़ाई लड़ी और अकेले ही सहस्त्रों शत्रुओं को मौत के घाट उतार दिया। अन्त में वह थक कर मूर्च्छित हो गया। यह देखकर बहुत से शत्रु तुरन्त ही उस पर टूट पड़े, उसे काबू में कर लिया और असंख्य घावों से घायल उस वीर को मरा हुआ जानकर भूमि पर डाल दिया। चन्द्रोदय होने पर क्षत्रिय

की चेतना लौटी और वह पुनः जीवित हो उठा। अत्यन्त कठिनाई से अपने आपको घसीटता हुआ वह निकट के गाँव में चला गया। अब उसकी शक्ति उत्तरोत्तर क्षीण होने लगी। वह थकावट के कारण एक घर के द्वार पर बैठ गया और उसके ऊपर जोर का प्रहार करके मूर्च्छित अवस्था में वहीं गिर पड़ा।

उस मकान में एक ब्राह्मणी रहती थी, जिसका पति घर से बहुत दूर था। वह चमेली के पुष्प की भाँति पवित्र थी। उसका नाम था सुवर्णशीला। आधी रात के समय द्वार खटकने से वह भयभीत हो उठी। उसने गवाक्ष से बाहर की ओर देखा। धवल चाँदनी में उसे दिखाई दिया कि एक मनुष्य उसके द्वार पर पड़ा हुआ है। उसने सोचा यह कोई जाल है। ओह, मेरे पड़ोसी मेरी सुन्दरता की सराहना करते रहते हैं। एक सुन्दर नारी किसमें कामोद्दीपन नहीं करती ? एक बड़े मोती की भाँति उसकी सुन्दरता सुरक्षित ही कैसे रह सकती है; जबकि उसका रक्षक घर से कहीं दूर हो। उसने फिर बाहर देखा। इस बार उसे धवल भूमि पर उस व्यक्ति के शरीर से निकलती हुई एक धारा दिखाई पड़ी और उसका हृदय करुणा से अभिभूत हो उठा। उसने सोचा—निस्सन्देह यह मनुष्य घायल है, और शायद मर रहा है। इसे अपने द्वार पर मरने देने में तो और भी बड़ा पाप है। यह सोचकर उसने अपनी दासी को बुलाया और उसके साथ बाहर जाकर वह घायल मनुष्य को अन्दर ले गयी। उसने उसके घावों पर मरहम-पट्टी करके उसे तब तक अपने घर में रखा, जब तक वह स्वस्थ न हो गया।

उस ब्राह्मणी को नित्य देखते-देखते उस क्षत्रिय का विवेक उसकी सुन्दरता की दमक से जलकर भस्म हो गया, और वह उसके सम्मुख पापयुक्त प्रस्ताव रखने लगा। ब्राह्मणी ने उसकी बात को न सुनने के लिए अपने कान बन्द कर लिये और कहा—'अरे, क्या अपने

साथ किए गए सद्व्यवहार का प्रतिकार तुम इस विश्वासघात और कृतघ्नता से करोगे ? देखो, एक साध्वी स्त्री के लिए उसका पति देवता होता है। अब यही अच्छा है कि तुम यहाँ से भाग जाओ।' जब क्षत्रिय ने यह देखा कि ब्राह्मणी के ऊपर उसका कोई वश नहीं चल सकता है तब उसने कहा—'देवता तो तुम हो, तुम्हारे पति नहीं। तुम्हारी सुन्दरता एक पवित्र संन्यासी की तपस्या को भी भङ्ग कर सकती है। यह सच है कि अपने जीवन के लिए मैं तुम्हारा ऋणी हूँ, किन्तु तुमने तो उसे पुनः लूट लिया है। अब मैं अवश्य इसी समय यहाँ से चला जाऊँगा, अन्यथा मेरी वासना मेरी कृतज्ञता पर अधिकार कर लेगी, क्योंकि प्रेम कृतज्ञता से बलवान् हुआ करता है।' फिर वह तुरन्त ही अन्यमनस्क होकर वहाँ से कहीं अन्यत्र चला गया।

जब ब्राह्मणी का पति विदेश से लौटा तब उसे एक नाइन मिली जो सुवर्णशीला के सौन्दर्य से ईर्ष्या करती थी। नाइन ने ब्राह्मण से कहा—'सुखी वही हैं, जिनके पास खजाने हैं। तुम्हारी अनुपस्थिति में तुम्हारे मुकुटमणि को किसी दूसरे ने धारण कर रखा था।' यह सुनकर ब्राह्मण ईर्ष्या से जल उठा। घर जाकर उसने अपनी स्त्री से सब कुछ पूछा। स्त्री ने उससे सारा वृत्तान्त कह सुनाया, परन्तु ब्राह्मण को उस पर विश्वास नहीं हुआ। तब उसने आग की ओर अपना हाथ फैलाकर कहा—'मैं अग्नि को साक्षी करके कहती हूँ कि यदि एक क्षण के लिए भी, स्वप्न में भी, मैं तुम्हारे प्रति सच्ची न रही हूँ तो...' —इतने में अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी और चमकती हुई लपट ने छत का चुम्बन कर लिया। लपट की दो जिह्वाओं ने निकल कर उस साध्वी का चुम्बन कर लिया—एक ने उसके मुख का और दूसरी ने उसके हृदय का। किन्तु ईर्ष्या और क्रोध से अन्धे पति ने कहा— 'इसमें कोई चालाकी है।' उसने तुरन्त अपनी तलवार खींच ली और अपनी स्त्री से कहा—'मेरे पीछे-पीछे आओ।' स्त्री ने उत्तर दिया— 'मेरे स्वामी की जो इच्छा।' वह स्त्री को एक वन में ले गया। वहाँ

उसने उसे एक वृक्ष से बाँध दिया। तदुपरान्त उसके हाथ, पैर, नाक और स्तनों को काट कर, उसे वहीं छोड़ दिया और स्वयं वहाँ से चला गया। कुछ समय पश्चात् शीत, पीड़ा और रक्तस्राव से वह उसी सुनसान स्थान में मर गई।

ब्राह्मण ने जो कुछ किया था उसे क्षत्रिय ने भी सुना। वह क्रोध और निराशा से बौखला उठा और उस ब्राह्मण के पास जाकर कहने लगा—'अरे मूर्ख, क्या तू जानता है कि तूने एक साध्वी का वध कर डाला है? मैं जानता हूँ कि यदि इसके बाद भी तू जीता रहा तो तेरा जीना तेरे लिए मृत्यु से भी बढ़कर दण्ड हो जायगा, इसलिए मैं तुझे तुरन्त मार ही डालना उचित समझता हूँ। लेकिन, नहीं, तू जीवित ही रह, जिससे तू अपने पापों के कारण निस्सन्तान ही मरे।' जब ब्राह्मणी के पति को वास्तविकता ज्ञात हुई और उसे झूठी नाइन की दुष्टता का पता चला, तो वह पश्चात्ताप से पागल हो उठा। वह संसार को छोड़कर अपने पाप का प्रायश्चित करने के लिए गङ्गा के किनारे चला गया और वहीं मर गया। इधर क्षत्रिय ने भी अपनी ही तलवार से अपना वध कर डाला।

राजकुमारी! आप ही बतलाइये कि विधाता ने एक निर्दोष को इतना कठोर दण्ड क्यों दिया?" इतना कहकर रसकोश चुप हो गया। राजकुमारी बोली—"जो मोक्ष का अधिकारी है क्या उसके अतिरिक्त और किसी को भी मोक्ष मिल सकता है? क्या सोने की परख उसे अग्नि में तपाये बिना भी हो सकती है? सुवर्णशीला परीक्षा में खरी उतरी और अपनी सच्चरित्रता को प्रमाणित कर गयी; और यही उसका सबसे बड़ा पुरस्कार है। मृत्यु अवश्यम्भावी है, किन्तु उससे भी अधिक अवश्यम्भावी है छोटे से छोटे कार्य का परिणाम।"

इतने में बड़े उच्च स्वर से आकाशवाणी हुई कि "प्रिय पुत्र! तूने ठीक ही कहा है।" राजकुमारी अपनी तेजोमयी दृष्टि से राजा की ओर देखती हुई उठकर बाहर चली गई और उसी के साथ चला गया

राजा का हृदय भी। अब राजा और रसकोश अपने-अपने कक्षों को वापस चले गए।

छठा दिन

राजा ने रसकोश से कहा—"प्रिय मित्र, यद्यपि राजकुमारी ने पुनः तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे दिया है और अब पाँच दिन नष्ट हो चुके हैं, तथापि मैं तुम्हें राजकुमारी के उस अश्रुकण के कारण क्षमा कर रहा हूँ, जो जाते-जाते उसके नेत्रों में चमक उठा था। ओहो, वह अश्रुबिन्दु वायु से बिखरे नीलकमल पर पड़े हुए ओसकण की भाँति प्रतीत हो रहा था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि राजकुमारी के चित्र के बिना मेरा जीवन प्रातःकाल के पूर्व ही समाप्त हो गया होता।" और अपनी प्रियतमा के चित्र को ध्यान से देखते-देखते उसने संज्ञा-हीनता की दशा में रात्रि व्यतीत कर दी। सूर्योदय के साथ ही वह भी उठ गया और रसकोश तथा वाटिका की सहायता से उसने बड़ी कठिनता से दिन की लम्बी घड़ियों को बिताया। अन्त में सूर्यास्त होने पर वे दोनों फिर दरबार में गए। वहाँ उन्होंने अपने सिंहासन पर बैठी हुई राजकुमारी को देखा। वह रक्तवर्ण के वस्त्र धारण किए हुए थी, और उसके कंचुक, मुकुट तथा आभूषणों में स्फटिक मणियाँ गुँथी हुई थीं। राजकुमारी राजा का रास्ता देख ही रही थी कि वह अन्दर आ गया। राजकुमारी के सौन्दर्य के जादू से मुग्ध होकर वह चुपचाप शय्या पर बैठ गया। अब रसकोश आगे आया और राजकुमारी के सम्मुख खड़ा होकर कहने लगा—

"भद्रे! एक राजा था। उसके तीन रानियाँ थीं। वे इतनी अधिक सुन्दर थीं कि जब किसी शुक्ल पक्ष की रात्रि में वे तीनों एक साथ चाँद तले बैठ जाती थीं तो यह निश्चय कर पाना कठिन हो जाता था कि चारों में वास्तविक चन्द्रमा कौन है। गर्मियों की एक रात में राजा अपने प्रासाद की छत पर तीनों

रानियों के साथ सो रहा था। अभी रानियाँ सो ही रही थीं कि राजा उठ पड़ा और उठते ही उसने ज्योत्स्ना में खड़े होकर अपनी सोती हुई रानियों की ओर देखा। उसने मन में सोचा—निश्चय ही नारी सौन्दर्य के विविध रूप होते हैं। मुझे आश्चर्य तो इस बात का है कि मैं यह निश्चय नहीं कर पाता कि मेरी तीनों रानियों में सबसे अधिक सुन्दर कौन है। ऐसा सोचकर वह एक-एक करके तीनों के समीप गया और उन्हें ध्यानपूर्वक देखा। चन्द्रमा की पूर्ण ज्योत्स्ना में एक रानी अपनी पीठ के बल लेटी हुई थी। उसका एक हाथ उसके मस्तक पर था। मन्द-मन्द चलने वाले समीर से उसका उन्नत स्तन कुछ-कुछ दिखाई पड़ जाया करता था। दूसरी रानी एक जालीदार पर्दे की छाया में लेटी हुई सो रही थी। उस पर पड़ने वाले अन्धकार और प्रकाश की छाया से वह आबनूस और हाथीदाँत की बनी हुई सी प्रतीत हो रही थी। उसके छोटे-छोटे कानों पर चन्द्रमा की क्षीण किरण पड़ रही थी। रात भर राजा अपनी समस्या में उलझा हुआ एक से दूसरे के पास भटकता रहा। जब वह एक रानी को छोड़कर दूसरी के निकट पहुँचता तब उसे वही रानी सबसे सुन्दरी प्रतीत होने लगती थी। अभी वह किसी निष्कर्ष पर पहुँच भी नहीं पाया था कि सूर्योदय हो गया।

नित्यक्रिया से निवृत्त होकर जब राजा सिंहासन पर बैठने जा रहा था, उसी समय उसके नयनेतृ नामक प्रधान मन्त्री ने कहा—'राजन्, आपके नेत्र जागरण से लाल क्यों हो रहे हैं?' राजा ने उत्तर दिया—'हे नयनेतृ! कल रात को मेरे मन में यह शङ्का उत्पन्न हुई कि मेरी तीनों रानियों में सबसे सुन्दरी कौन है? इसी उलझन में मुझे नींद नहीं आई और अभी तक मैं अपनी समस्या को सुलझा नहीं सका हूँ।' नयनेतृ ने उत्तर दिया—'राजन्! आपको तो इससे सन्तोष होना चाहिए कि आपकी रानियों की सुन्दरता में कोई भेद नहीं है, जिससे उनमें परस्पर ईर्ष्या-भाव भी नहीं है। व्यर्थ का कुतूहल मन

की शान्ति को नष्ट करके बुराइयों को उत्पन्न करता है।' राजा ने कहा—'मेरा दृढ़ संकल्प है कि किसी भी मूल्य पर मैं इस समस्या का निश्चय करके ही मानूँगा।'

जब नयनेतृ ने देखा कि राजा का मन अपना हठ नहीं छोड़ रहा है तो वह कहने लगा—'राजन्! मन्त्री तो घुड़सवारों के समान होते हैं। घुड़सवार जिस घोड़े को रोक नहीं सकता, उसका वह मार्गदर्शन तो करता ही है, जिससे घोड़ा और घुड़सवार दोनों का अकल्याण न होने पाए। जब आप अपनी रानियों की सुन्दरता के सम्बन्ध में निश्चय कर ही डालना चाहते हैं, तो आप मेरी बात सुनिये। कुछ ही दिन पूर्व आपके राज्य में एक युवक लम्पट ब्राह्मण आया है। उसका नाम है—कान्तिग्रह। नारी-सुन्दरता को परखने के लिए तीनों लोकों में उसकी ख्याति है। आप उसे बुला लीजिये। वह आपकी रानियों को देखकर निश्चित रूप से यह बतला देगा कि इनमें से कौन सबसे अधिक सुन्दरी है। हंस भी उतनी कुशलता से नीर-क्षीर का भेद नहीं कर सकता, जितनी कुशलता से वह सुन्दरता का भेद बतला सकता है।'

इससे राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कान्तिग्रह को बुलवाया। वे दोनों खड़े हुए वार्तालाप कर ही रहे थे कि इतने में रानियाँ क्रमशः एक-एक करके कक्ष से होकर निकलीं। पहली रानी के निकलने पर ब्राह्मण भूमि में गड़ा-सा खड़ा रहा। जब दूसरी रानी निकली, तब वह थोड़ा सा कम्पित हुआ, और जैसे ही तीसरी रानी उधर से निकली, उसका रङ्ग बदल गया। उन तीनों रानियों के चले जाने पर राजा ने कहा—'ब्राह्मण! आप निर्णायक हैं, अतः आप ही बतलाइये कि इन तीनों में सबसे सुन्दर कौन है?' कान्तिग्रह ने अपने मन में कहा—'यदि मैं राजा को सच्ची बात बतलाता हूँ तो वह अप्रसन्न हो उठेंगे, क्योंकि उससे उनकी प्रियतमा का अपमान होगा। इसके अतिरिक्त अन्य दो रानियाँ भी उसे सुनेंगी और मुझे विष दिलवा देंगी।' यह

सोचकर उसने नम्रता से उत्तर दिया—'हे राजन्! मुझे निर्णय करने के लिए समय चाहिए। आप मुझे कल तक अवकाश प्रदान करें।' राजा ने ब्राह्मण को अवकाश दे दिया। कान्तिग्रह शीघ्र ही बाहर निकल गया और उसने अन्यमनस्क होकर यह निश्चय किया कि आज रात्रि होने के पूर्व ही मुझे इस नगर को छोड़ देना चाहिए। क्योंकि इनमें से एक रानी तो ऐसी है ही जिसे मैं बहुत प्रसन्न कर दूँगा।'

नयनेतृ ने बाह्य लक्षणों से ब्राह्मण के मन की बात को जानकर कहा—'राजन्! यह ब्राह्मण आपको धोखा देना चाहता है। वह भयभीत है, और सम्भवतः रात होने से पूर्व ही वह इस नगर को छोड़ देने का प्रयत्न करेगा। मैं आपको एक ऐसा उपाय बतलाता हूँ जिससे उसका मत ज्ञात हो सकेगा।' राजा ने वैसा ही किया जैसा कि उसके मन्त्री ने बतलाया था। जब उसे यह ज्ञात हो गया कि उसकी कौन सी रानी सबसे सुन्दरी है तो वह उसे ही सबसे अधिक प्यार करने लगा। अन्य दो रानियों ने ईर्ष्यावश सर्वाधिक प्रिय रानी को विष दे दिया। जब राजा को इसका पता चला तो उसने दोनों को मरवा डाला। जैसा कि नयनेतृ ने पहले ही भविष्यवाणी की थी, राजा अपने कुतूहल के कारण अपनी तीनों रानियों से हाथ धो बैठा।

राजकुमारी! अब तुम्हीं बताओ कि कान्तिग्रह का मत जानने के लिए राजा ने क्या किया होगा।" यह कहकर रसकोश चुप हो गया। राजकुमारी ने उत्तर दिया—"उसे कुछ करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी होगी। तीसरी रानी ही सबसे अधिक सुन्दरी थी। इसका कारण यह है कि पहली रानी की सुन्दरता ने ब्राह्मण को स्तब्ध कर दिया था, दूसरी रानी की सुन्दरता ने उसके हृदय में भयमिश्रित आदर उत्पन्न कर दिया था, किन्तु तीसरी रानी की सुन्दरता ने उसके हृदय को मोहित कर लिया था। नयनेतृ इसकी पुष्टि करना चाहता था। वह कान्तिग्रह के चरित्र को तो जानता ही था। इसलिए उसने प्रत्येक रानी की ओर से उसके लिए राजा से झूठे पत्र लिखवाये। पत्रों में

उसके लिए प्रेम का प्रदर्शन किया गया था और उससे मिलने का समय भी निश्चित किया गया था। वह तो अकेला ही था, इसलिए वह उसी के पास गया, जिसे वह सबसे सुन्दरी समझता था। वहाँ राजा के द्वारा नियुक्त रक्षकों ने उसे पकड़ लिया। मनुष्यों के शब्दों की अपेक्षा उनके आचरण ही उनके हृदयगत भावों की सूचना अधिक स्पष्ट रूप से दे सकते हैं।"

इतना कह चुकने के बाद राजकुमारी उठ खड़ी हुई। वह राजा की ओर कातर दृष्टि से देखती हुई बाहर चली गई और उसके साथ ही चला गया राजा का हृदय भी। तदनन्तर राजा और रसकोश अपने-अपने कक्षों को लौट गये।

सातवाँ दिन

राजा ने रसकोश से कहा—"प्रिय मित्र! यद्यपि वह राजकुमारी तुम्हें फिर धोखा देकर निकल गयी और अब छः दिन नष्ट हो चुके हैं, तथापि मैं तुम्हें इसलिए क्षमा कर रहा हूँ कि तुम्हारी कहानी ने मेरी प्रियतमा को अपनी अद्भुत बुद्धिमत्ता के प्रदर्शन का अवसर प्रदान किया। ओहो! उसके स्त्री-शरीर में बृहस्पति का आत्मा है। किन्तु जाते समय जिस कातरता से उसने मेरी ओर देखा था, उससे मेरा हृदय टूट चुका है। मैं नहीं जानता कि उसके चित्र के होते हुए भी मैं अब उसके विरह को कैसे सहन कर सकूँगा?" और चित्र को ध्यान-पूर्वक देखते-देखते उसने बड़ी अधीरता से रात काटी। सूर्योदय होते ही वह भी उठ गया और रसकोश तथा वाटिका की सहायता से उसने जैसे-तैसे दिन भी बिता दिया।

सूर्यास्त होने पर वे लोग पुनः सभाभवन में गए। वहाँ उन्होंने सिंहासन पर बैठी हुई राजकुमारी को देखा। वह नीले वस्त्र पहने हुए थी और उसके कंचुक, मुकुट एवं अन्य आभूषणों में मणियाँ जड़ी हुई थीं। राजा को देखकर उसने एक आह भरी। राजा भी

उसकी सुन्दरता के जादू से मुग्ध होकर चुपचाप आसन पर बैठ गया। फिर रसकोश आगे आकर खड़ा हो गया और कहने लगा—

"भद्रे ! प्राचीन काल में एक ठग था। वह अपने जैसे अन्य ठगों के साथ जुआ खेलकर अपना सब कुछ खो बैठा। अब वह एक संन्यासी बनकर रहने लगा, जिससे वह अपना पाखण्ड फैलाकर उसकी सहायता से अपनी जीविका का निर्वाह कर सके। उसने अपने शरीर पर भस्म रमाया, जटायें बढ़ा लीं, और पीताम्बर, तथा अस्थिओं एवं रुद्राक्ष की माला धारण कर ली। इस प्रकार संन्यासी का ढोंग रचकर वह भिक्षा माँगते हुये इधर-उधर घूमने लगा। एक दिन वह सड़क के किनारे बैठा हुआ था। उसी समय उस देश के राजा की कन्या अपने हाथी पर बैठ कर उधर से निकली। हवा के झोंके से हौदे पर पड़ा हुआ पर्दा इधर-उधर उड़ने लगा, जिससे संन्यासी की दृष्टि राजकन्या पर पड़ी। राजकन्या को देखकर संन्यासी के हृदय में उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हुई। वह कह उठा—'इस सौन्दर्य की प्राप्ति में ही मेरे जन्म की सफलता है। किन्तु यह हो कैसे ?'

बहुत समय तक इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने के पश्चात् वह ठग संन्यासी एक बहुत बड़े वृक्ष के समीप गया, जो राजभवन के बाहर लगा हुआ था। उस वृक्ष की एक शाखा पर वह सिर नीचे करके चमगादड़ की तरह लटक गया। घण्टों तक वह इसी स्थिति में लटका हुआ कुछ जप करता रहा। वह नित्यप्रति यही क्रिया करता था, जिससे उसे देखने के लिए अपार जनसमूह उमड़ने लगा। राजा को सूचना मिली कि एक बहुत बड़ा संन्यासी आया है जो उसके राजप्रासाद के सामने एक वृक्ष के नीचे तपस्या कर रहा है। यह सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और अपने को अत्यन्त सौभाग्यशाली मानकर उस तपस्वी के दर्शनों के लिए गया। संन्यासी ने वृक्ष पर लटके-लटके ही राजा को आशीर्वाद दिया। राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ

और उस दिन से वह उस धूर्त के पास नित्य भोजन एवं अन्य सामग्री भेजने लगा।

एक दिन राजकुमारी हासमूर्ति फिर अपने हाथी पर सवार होकर उधर से निकली तो उसने उस संन्यासी को चमगादड़ की तरह वृक्ष पर लटकते हुए देखा। उस दृश्य को देखकर वह पुलकित हो उठी और जोर से हँस पड़ी। संन्यासी ने राजकुमारी के हास्य को सुन लिया और वह वृक्ष से उतरकर राजा के पास गया। वहाँ पहुँच कर उसने राजा से कहा—'राजन्! आपकी पुत्री मुझ पर हँसती है, जिससे मेरी तपस्या में विघ्न पड़ता है। इस प्रकार की अवज्ञा अथवा अवहेलना से प्राचीन काल के बड़े-बड़े ऋषि भी खीझ उठते थे। वह अपराधियों को शाप देकर उन्हें कठोर दण्ड दिया करते थे। मुझे तो इन कष्टों को सहने का अभ्यास हो गया है, इसलिए तुम्हारी पुत्री को क्षमा कर रहा हूँ। किन्तु मैं तुम्हारे राज्य को शाप देने वाला हूँ। जिससे उसमें बीस वर्षों तक वर्षा ही न होगी।' राजा तो बिलकुल मूर्ख था। उसने जब यह सुना, वह अत्यन्त भयभीत हो उठा। उसने उस धूर्त संन्यासी से बहुत अनुनय-विनय की। इससे वह शान्त होने का ढोंग रचते हुए बोला—'अच्छा! इस बार तो मैं तुम्हारे साम्राज्य को शाप देने का अपना निश्चय बदल रहा हूँ, किन्तु इतना ध्यान रहे कि इस प्रकार की बात फिर न हो।' यह कहकर धूर्त संन्यासी फिर उसी वृक्ष पर वापस चला गया और राजा ने एकान्त में ले जाकर राजकुमारी की बड़ी भर्त्सना की।

दूसरे ही दिन राजकुमारी पुनः उस वृक्ष के पास से होकर निकली। उस पर संन्यासी को लटकता हुआ देखकर, अपने पिता को दिए गए वचनों के विरुद्ध, वह पहले की भाँति पुनः पुलकित हो उठी और पहले से भी अधिक समय तक खिलखिला कर हँसती रही। संन्यासी पुनः राजा के पास पहुँचा। वह क्रोध से पीला पड़ गया था। राजा ने बड़ी कठिनता से क्षमा-याचना करके संन्यासी के क्रोध को शान्त किया।

संन्यासी वृक्ष के पास लौट गया और राजा ने पुनः अपनी पुत्री की भर्त्सना की। इस बार राजकुमारी ने प्रतिज्ञा की कि अब मैं कभी ऐसा अपराध नहीं करूँगी।

दो दिनों तक हासमूर्ति दूसरे मार्ग से आती-जाती रही, जिससे संन्यासी के रुष्ट होने का अवसर ही न आ सके। तीसरे दिन उसे कुछ ध्यान न रहा। वह पुनः उस वृक्ष के समीप से निकली और उसने संन्यासी को लटकता हुआ देखा। सहसा उसने ऐसा अट्टहास किया, जैसे स्वयं शिव ने ही उसे प्रेरित किया हो। राजभवन में आ जाने के बाद भी वह पागल की भाँति हँसती रही।

संन्यासी वृक्ष से उतर कर राजा के पास गया और कहने लगा—'राजन्! निश्चय ही तुम्हारे साम्राज्य का अन्त निकट आ गया है और तुम्हारी पुत्री पर किसी दानवी शक्ति का प्रभाव है। उसने फिर मेरा उपहास किया है और पहिले से भी अधिक। इसने मेरा ध्यान भङ्ग करके मेरी तपस्या के फल को नष्ट कर दिया है। अब तुम मेरे प्रतिकार को सहन करने के लिए तैयार रहो।' यह सुनकर राजा की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी। उसने कहा—'महाराज! क्या इसका कोई निदान नहीं है!' संन्यासी ने उत्तर दिया—'क्या कोई भी मेरा ध्यान भङ्ग कर सकता है? कदापि नहीं। परन्तु तुम्हारी पुत्री तो सुधर ही नहीं सकती है।' राजा ने पूछा—'क्या इसका सुधार करने के लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता? क्या आपको इसकी विपत्ति दूर करने का कोई भी उपाय नहीं मालूम है?' यह सुनकर धूर्त ने मन में गद्गद् होकर कहा—'अच्छा, मैं तो दयालु व्यक्ति हूँ, कुछ न कुछ करूँगा ही। पहले मैं तुम्हारी पुत्री को देख लूँ, तब उसके लिए कुछ मन्त्रोपचार करूँगा। यदि मैं उस पर से उस भूत को उतार सका, जो उसे समय-असमय हँसाया करता है, तब तो ठीक है, अन्यथा शाप तो लगेगा ही।'

यह सुनकर राजा संन्यासी को अपनी पुत्री के कक्ष में ले गया। उसने राजकुमारी से कहा—'बेटी, तुम्हारी हँसी निरन्तर इन संन्यासी

महाराज के ध्यान को भङ्ग किया करती हैं। यह बड़े ही दयालु महात्मा हैं। इसीलिए ये तुम्हारा भूत उतारने आए हैं। यदि वह भूत नहीं उतरेगा तो ये महात्मा मेरे राज्य को शाप दे देंगे, जिससे वह अकाल पड़ने के कारण नष्ट हो जायगा।' संन्यासी ने कहा—'सब लोग चले जायें, मुझे अकेले ही राजकुमारी के साथ छोड़ दिया जाय।' राजा ने संन्यासी को अलग ले जाकर उससे कहा—'महाराज ! मेरी पुत्री किसी के साथ अकेली नहीं छोड़ी जा सकती।' यह सुनकर संन्यासी बोला—'मुझसे किसी प्रकार की आशंका मत करो। मैं कोई साधारण मनुष्य नहीं हूँ। बहुत समय पूर्व मैं अपना पुरुषत्व विन्ध्यवासिनी की बलि चढ़ा चुका हूँ।'

इस बातचीत को हासमूर्ति ने भी सुना। उसने अपने मन में कहा—'मेरे पिता जी तो भोले-भाले हैं, और निश्चय ही यह मनुष्य मेरा अपमान करना चाहता है। अब उसे यह ज्ञात हो जायगा कि मैं हँसने के अतिरिक्त कुछ और भी कर सकती हूँ।' यह सोचकर राजकुमारी ने अपने पिता जी से कहा—'आप आशङ्का न कीजिये, ये तो महात्मा पुरुष हैं।' किन्तु उसने सभी दासियों को पास के कक्ष में नियुक्त कर दिया। जब संन्यासी ने देखा कि वह राजकुमारी के साथ अकेला है तो उसकी वासना इतनी तीव्र हो उठी कि वह बड़ी कठिनता से अपने को वश में रख सका। जैसे-तैसे उसने अपने काँपते हुए हाथों से एक मण्डल बनाया। उसने राजकन्या को उस मण्डल में बिठलाकर कुछ समय तक मन्त्रोचारण किया। तत्पश्चात् उसने राजकुमारी से कहा—'तुम्हें दिगम्बरा हो जाना चाहिए, अन्यथा मेरे मन्त्रों का कोई प्रभाव ही न होगा। तुम अपने वस्त्रों को उतार दो।' हासमूर्ति ने उत्तर दिया—'महाराज, यह तो असम्भव है।' इतना सुनते ही संन्यासी ने राजपुत्री को पकड़ लिया। राजकुमारी ने तालियाँ बजाईं। उसे सुनकर उसकी दासियाँ दौड़ कर अन्दर आ गईं। उन्होंने संन्यासी को पकड़ लिया। राजकुमारी ने दासियों से कहा—'इस संन्यासी की परीक्षा

करो, और देखो कि इसमें पुरुषत्व है या नहीं।' दासियों ने वैसा ही किया और हँसती हुई राजकुमारी से कहा—'राजकुमारी जी, यह तो सोलह आने पुरुष ही है।' हासमूर्ति ने कहा—'यह चाकू लो और इसका पुरुषत्व छीन लो।' दासियों ने तत्काल उसके इस आदेश का पालन किया।

राजकुमारी ने संन्यासी से कहा—'अब तुम जा सकते हो, क्योंकि अब अभिचार पूर्ण हो चुका है। यदि तुमने मेरे पिता जी से कुछ शिकायत की तो मैं तुम्हें दण्डित करने के लिए सभी साक्ष्य प्रस्तुत कर दूँगी।' राजकुमारी के ऐसा कहने पर दासियों ने संन्यासी को छोड़ दिया। जैसे ही वह दासियों के हाथ से छूटा, उसने हँसना प्रारम्भ कर दिया और तब तक हँसता ही रहा, जब तक वह राजा के सम्मुख नहीं पहुँच गया। राजा के सामने जाकर संन्यासी ने कहा—'राजन्, मुझे रोको मत, मैंने सफलतापूर्वक अभिचार सम्पन्न कर लिया है। देखो तो, अब मैंने हँसी के भूत को पकड़ लिया है और उसे दूर लिए जा रहा हूँ।'

राजकुमारी! मुझे बतलाइये कि संन्यासी हँसता क्यों था?" यह कह कर रसकोश चुप हो गया। राजकुमारी ने अपनी भृकुटि को कुछ चढ़ा कर उत्तर दिया—"वह अपने आत्मा की कायरता के कारण हँस रहा था। वह बड़ा प्रसन्न था कि वह काल के गाल के समान उन दासियों के चंगुल से बच कर निकल गया है। उसके लिए अपने प्राणों की तुलना में अपनी योजना की असफलता और अपने पुरुषत्व का नाश कुछ भी नहीं था। प्राणों का नाश कायरों के लिए तो सबसे भयंकर विपत्ति है, किन्तु महात्माओं के लिए वह कुछ भी नहीं है। वे अपने उद्देश्य में असफल होने की अपेक्षा सहस्रों बार अपने प्राणों का परित्याग करना श्रेष्ठ समझते हैं।"

इतना कह चुकने के पश्चात् राजकुमारी राजा की ओर ध्यान

से देखती हुई उठ कर बाहर चली गई, और उसके साथ ही चला गया राजा का हृदय भी। फिर राजा और रसकोश अपने अपने कक्षों को लौट आए।

आठवाँ दिन

अब राजा ने रसकोश से कहा—"प्रियमित्र! यद्यपि मेरी प्रियतमा ने तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे दिया है, और मेरे सात दिन व्यतीत हो चुके हैं, तथापि मैं तुम्हें क्षमा कर रहा हूँ—केवल उस भृकुटि के लिए नहीं, जो राजकुमारी के मुख पर उसी प्रकार खेल रही थी, जिस प्रकार किसी झील पर एक छोटी लहर खेला करती है, बल्कि मैं तो तुम्हें उसके मुख से निकले शब्दों के लिए क्षमा कर रहा हूँ। निश्चय ही वह मेरे उद्देश्य में मेरा साहस बढ़ाना चाहती थी। वह तो साक्षात् बुद्धि की प्रतिमा है, और यह उसकी बुद्धि का ही परिणाम है कि वह अगम्य बनी हुई है। वियोग की लम्बी घड़ियों में उसका चित्र भी बड़ी कठिनता से मुझे जीवित रख सकेगा।" और वह रात भी राजा ने बड़ी उद्विग्नता से चित्र को देख-देख कर काट दी। सूर्योदय होते ही वह फिर उठ बैठा और जैसे-तैसे उसने वाटिका और रसकोश की सहायता से दिन भी बिताया। सूर्यास्त होते ही राजा और रसकोश फिर दरबार में पहुँचे। वहाँ पर उन्होंने राजकुमारी को देखा। वह एक सिंहासन पर बैठी हुई थी। उसके वस्त्र केसरिया रङ्ग के थे और उसके कंचुक, मुकुट और आभूषणों पर पद्मराग मणियाँ जड़ी हुई थीं। जैसे ही राजा दरबार में पहुँचा, राजकुमारी उसे देखकर मुस्काने लगी। राजकुमारी की सुन्दरता के जादू से आकृष्ट होकर राजा एकदम अवाक् हो आसन पर बैठ गया। तत्पश्चात् रसकोश आगे बढ़कर राजकुमारी के सामने खड़ा हो गया और कहने लगा—

"भद्रे! प्राचीन काल में किसी देश में एक दुष्ट ब्राह्मण रहता था। वह जान बूझकर कोई न कोई घोर पाप किया करता था। उसके गुरु

ने उसे बताया कि तुम्हारा अपराध तभी धुल सकता है और तुम्हारे पापों का प्रायश्चित्त तभी हो सकता है, जब तुम अपना शेष जीवन गङ्गास्नान में बिताओ। ब्राह्मण ने अपनी सारी सम्पत्ति अपने पुत्र को दे दी और स्वयं दण्ड-कमण्डल लेकर गङ्गा जी की ओर चल पड़ा। कुछ दिनों तक चलते-चलते वह एक छोटी-सी पहाड़ी नदी के किनारे पहुँचा। गर्मियों में उस नदी का जल सूख जाया करता था। उस पहाड़ी नदी को देखकर ब्राह्मण ने अपने मन में सोचा—'हो न हो, गङ्गा जी तो यही हैं।' इसलिए उसने उसी नदी के तट पर अपना आश्रम बना लिया। नदी में जितना पानी उसे मिलता था, उसी में वह स्नान कर लिया करता था। इस प्रकार वह ब्राह्मण वहाँ पाँच वर्षों तक रहा।

कुछ समय पश्चात् एक पाशुपत संन्यासी उधर से होकर निकला। उसने ब्राह्मण से कहा—'प्रिय पुत्र! तुम यहाँ बैठे क्या कर रहे हो?' ब्राह्मण ने उत्तर दिया—'महाराज! मैं अपने पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए गङ्गा के तट पर तपस्या कर रहा हूँ।' यह सुनकर संन्यासी बोला—'इस तुच्छ पोखर का गङ्गाजी से क्या सम्बन्ध?' इस पर ब्राह्मण ने कहा—'तो क्या यह गङ्गा जी नहीं हैं?' यह सुन कर संन्यासी मन ही मन हँसने लगा और बोला—'मैं इतना बूढ़ा हो गया हूँ, किन्तु मैंने कभी यह नहीं सोचा कि इस संसार में इतना अज्ञान हो सकता है। भोले मनुष्य! तुझको भ्रम में किसने डाल दिया है? गङ्गा जी तो यहाँ से सैकड़ों मील दूर हैं। गङ्गा जी और इस छोटे नाले में उतना ही भेद है जितना सुमेरु पर्वत और वल्मी में है।'

यह सुनकर ब्राह्मण ने कहा—'महाराज, मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूँ।' और फिर वह अपना दण्ड-कमण्डल लेकर वहाँ से चल पड़ा। चलते-चलते वह एक बड़ी नदी के किनारे पहुँचा। नदी को देखकर वह आनन्द मग्न हो कहने लगा—'हो न हो, यही पवित्र गङ्गा जी हैं।'

यह सोच कर वह उसके किनारे रहने लगा। इस प्रकार वह वहाँ निरन्तर पाँच वर्षों तक रहकर नित्य ही उसके जल में स्नान करता रहा। एक दिन वहाँ एक कापालिक आया। उसने ब्राह्मण से कहा—'तुम यहाँ इस नदी के तट पर अपना बहुमूल्य समय क्यों नष्ट कर रहे हो, जिसका पवित्रता की दृष्टि से कोई महत्व ही नहीं है। तुम गङ्गा के किनारे क्यों नहीं चले जाते?' ब्राह्मण आश्चर्य में पड़ गया और बोला—'अरे, क्या यह भी गङ्गा जी नहीं हैं?' कापालिक ने उत्तर दिया—'यह और गङ्गा! क्या गीदड़ भी सिंह हो सकता है, अथवा चाण्डाल ब्राह्मण हो सकता है? महाशय जी आप स्वप्न देख रहे हैं।'

यह सुनकर ब्राह्मण ने बड़े दुःख से कहा—'श्रेष्ठ कापालिक! मैं आपका ऋणी हूँ। मेरा बड़ा सौभाग्य है कि आपसे मेरी भेंट हो गयी।' इतना कहकर उसने अपना दण्ड-कमण्डल उठाया और आगे बढ़ चला। चलते-चलते वह नर्मदा के तट पर पहुँचा। उसने सोचा—'हो न हो, यही पवित्र गङ्गा जी हैं।' यह सोचकर ब्राह्मण गद्गद् हो उठा। वह नर्मदा के जल में स्नान करता हुआ वहाँ पाँच वर्षों तक रहा। एक दिन उसे निकट ही तट पर अपने समान एक यात्री दिखाई पड़ा। वह नदी में फूल चढ़ाता जाता था और नदी को उसके नाम से सम्बोधित करता जाता था। यह देखकर ब्राह्मण यात्री के समीप गया और उससे बोला—'महाशय जी! इस नदी का नाम क्या है?' यात्री ने उत्तर दिया—'क्या यह भी सम्भव है कि तुम पवित्र नर्मदा के नाम से भी परिचित न हो?' यह सुनकर ब्राह्मण ने एक गहरी सांस ली और कहा—'महाशय जी! आपने मुझे प्रकाश दिया है।' इतना कहकर वह अपना दण्ड-कमण्डल उठाकर वहाँ से चल पड़ा।

वैसे तो वह बहुत वृद्ध और दुर्बल था नहीं, किन्तु दीर्घकालीन तपस्या ने उसके ढाँचे को शिथिल कर दिया था और उसकी शक्ति क्षीण हो चली थी। दिन भर की गर्मी में वह जलती हुई भूमि पर

जितना ही परिश्रम करता था, उतना ही सूर्य उसके सिर पर इन्द्र के वज्र की भाँति प्रहार करता था और उसे ज्वर से पीड़ित करता रहता था। फिर भी वह किसी प्रकार अपने-आपको संभाले हुए संघर्ष करता जाता था।। इस कारण वह दिन-पर-दिन शिथिल होता जाता था। अन्त में वह अधिक परिश्रम करने में असमर्थ हो गया और थककर भूमि पर गिर पड़ा। अब उसकी मृत्यु निकट दिखाई देने लगी। परन्तु वह एक बार फिर अपनी शेष शक्ति को एकत्र करके जैसे-तैसे अपने आपको सामने की एक नीची पहाड़ी तक घसीट ले गया। अब क्या था, सामने ही गङ्गा की वेगवती धारा बह रही थी। असंख्य यात्री उसके तट पर तपस्या कर रहे थे और उसके पवित्र जल में स्नान कर रहे थे। गङ्गा को देखकर वह अपनी पीड़ा के कारण जोर-जोर से चिल्लाकर कहने लगा—'गङ्गा माता, हे गङ्गा माता! कितने खेद की बात है कि मैं आजीवन आप की खोज करता रहा, और अब मैं तुम्हारे सामने ही असहाय होकर मर रहा हूँ।' उसका हृदय टूट गया और वह अन्तिम समय में भी गङ्गा तट न पहुँच सका।

जब वह परलोक में पहुँचा तो यमराज ने महाराज चित्रगुप्त से पूछा—'इसके विरुद्ध कौन सा अपराध है?' चित्रगुप्त ने उत्तर दिया—'मुझे तो इसके विरुद्ध एक घोर पाप दिखाई पड़ता है, किन्तु इसने गङ्गा के तट पर पन्द्रह वर्षों तक तपस्या करके उसका प्रायश्चित कर डाला है।' यह सुनकर ब्राह्मण आश्चर्य में पड़ गया और कहने लगा—'महाराज, आप भूलते हैं, मैं तो कभी गङ्गा के तट तक नहीं पहुँच सका।' इस पर यमराज मुस्करा उठे।

राजकुमारी! आप ही मुझे बतलाइये कि यमराज के मुस्कराने का अभिप्राय क्या था?" इतना कहकर रसकोश मौन हो गया। राजकुमारी ने उत्तर दिया—"यमराज बड़े न्यायी हैं। वह कभी भूल नहीं कर सकते, और न चित्रगुप्त ही धोखा खा सकते हैं। यह सम्पूर्ण

संसार माया के अतिरिक्त और है ही क्या ? गङ्गा के तट पर भी अच्छी भावना से न किया गया तप जिस प्रकार सच्चा तप नहीं है। उसी प्रकार चित्रगुप्त ने भोले-भाले ब्राह्मण के उस तप को भी सच्चा तप मान लिया, जिसे उसने इस विश्वास से किया था कि वह गङ्गा के तट पर ही पहुँच गया है। इसका कारण यह है कि मनुष्य तो किसी का आडम्बर देखकर ही उसके विषय में निर्णय कर लेता है, किन्तु देवता उसका हृदय देखते हैं।"

इतना कह चुकने के बाद राजकुमारी उठ खड़ी हुई और राजा की ओर देखकर मुस्कराती हुई चली गई, और उसके साथ ही चला गया राजा का हृदय भी। फिर राजा और रसकोश अपने-अपने कक्ष को लौट आए।

नवाँ दिन

राजा ने रसकोश से कहा—"प्रिय मित्र ! राजकुमारी फिर जीत गई। अब तो आठ दिन व्यतीत हो गए हैं, तथापि मैं तुम्हें क्षमा ही कर दूँगा—केवल इसलिए कि जाते-जाते वह मेरी ओर देखकर मुस्करा गई है। ओ हो, उसकी मुस्कान मानसरोवर के तट पर बैठे हुए सूर्यातप से सुशोभित, हंस की भाँति शुभ्र थी। अरे, अब तो यह चित्र भी कठिनता से ही मुझे प्रातःकाल तक जीवित रख सकता है।" उसका यह कथन सत्य भी था, क्योंकि चित्र की ओर दुःख के साथ देखते-देखते ही उसने बड़ी अधीरता से रात्रि व्यतीत की। सूर्योदय होने के साथ वह फिर उठ पड़ा और उस लम्बे दिन को रसकोश और वाटिका की सहायता से किसी प्रकार काट दिया। सूर्यास्त होने पर वे दोनों पुनः सभाभवन में गए। वहाँ उन्होंने सिंहासन पर बैठी हुई राजकुमारी को देखा। उसके वस्त्र बैंगनी रंग के थे और उसका कंचुक, मुकुट एवं उसके आभूषण तपाये हुए सोने के। राजकुमारी ने आनन्दमग्न होकर राजा की ओर देखा। उसकी सुन्दरता से मुग्ध होकर राजा अवाक्

होकर आसन पर गिर पड़ा। अब रसकोश आगे आकर राजकुमारी के सामने खड़ा हो गया और कहने लगा—

"भद्रे! किसी नगर में एक धनवान् व्यापारी रहता था। उसकी स्त्री अत्यन्त सुन्दरी थी। व्यापारी अपनी स्त्री को अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करता था। परन्तु वह स्त्री दुश्चरित्रा और स्वेच्छाचारिणी थी। वह सदैव परपुरुष की खोज में रहा करती थी। वासना में लिपटा हुआ उसका गुण वन में एक तृण के समान था। व्यापारी अपनी स्त्री के प्रेम के कारण उसके सभी अपराधों को जितना ही क्षमा करता जाता था, उतना ही वह उससे घृणा करती जाती थी और उसकी ओर से उसकी रुचि हटती जाती थी।

एक दिन वह खिड़की से बाहर झाँक रही थी कि उसे एक सुन्दर युवक राजपूत दिखाई पड़ा। उसे देखते ही वह वासना से अभिभूत हो गयी। उसी क्षण वह अपने पति और घर का परित्याग कर उस राजपूत के साथ भाग निकली। जब व्यापारी ने देखा कि उसकी स्त्री उसे छोड़ कर चली गई है तो उसे बड़ी निराशा हुई और वह अपने जीवन से विरक्त-सा रहने लगा। वह केवल इसी आशा से जीवित रह सका कि किसी न किसी दिन उसकी स्त्री लौट ही आएगी। ठीक है, जिन वियोगियों को संसार भार बन जाता है, उन्हें एक मात्र आशा ही इस संसार में उलझाए रखती है। किन्तु जब से वह स्त्री चली गई तब से अन्य वस्तुएँ भी उसकी आँखों में खटकने लगी थीं। धीरे-धीरे वह अपने व्यापार की उपेक्षा करने लगा, जिससे वह बिल्कुल कंगाल हो गया। अब वह अपने मित्रों के लिए घृणा एवं तिरस्कार का पात्र बन गया। अपने सभी कार्यों और आनन्द की सामग्रियों को छोड़कर वह अपने घर में ही पड़ा रहने लगा। उसके हृदय-पटल पर रात-दिन उसकी भागी हुई स्त्री का ही चित्र अंकित रहता था। इस प्रकार उसने तीन वर्ष व्यतीत किए। निर्जनता के निबिड अन्धकार में उसकी एक-एक घड़ी एक-एक कल्प के समान बीतती थी।

कुछ समय तक उस राजपूत के साथ रहते-रहते वह स्त्री उससे ऊब सी गई। उसने उसे छोड़कर दूसरे जार को खोजा, दूसरे को छोड़कर तीसरे के पास गई और इस प्रकार एक पुरुष को छोड़कर दूसरे पुरुष के पास वह उसी प्रकार भटकती रही, जिस प्रकार भ्रमर एक फूल से दूसरे पर और दूसरे से तीसरे पर मँडराता फिरता है। एक रात की बात है, वह स्त्री एक व्यापारी के पुत्र के साथ सहवास कर रही थी। व्यापारी का पुत्र उसकी सुन्दरता पर मोहित होकर सहसा उसके चरणों का चुम्बन करने के लिए झुक पड़ा। स्त्री तत्काल उस व्यापारी पुत्र के इरादे को नहीं समझ सकी, इस कारण उसने शीघ्रता से अपना पैर खींच लिया। पैर व्यापारी के पुत्र के कान में पड़े हुए कुंडल की एक मणि में उलझ गया, जिससे उसका पैर फट गया। धीरे-धीरे पैर तो ठीक हो गया, किन्तु उसका चिह्न शेष रह गया।

तीन वर्ष बीत गए। एक दिन स्त्री का पति व्यापारी अपने सूने घर में अकेला बैठा हुआ था। उसके मानस-चक्षु के सामने उसकी स्त्री का चित्र था। इतने में किसी ने द्वार खटखटाया। उसके पास धन न रह जाने से उसके नौकर-चाकर तो उसे छोड़कर बहुत पहले ही चले गए थे, इसलिए द्वार खोलने वह स्वयं गया। जैसे ही उसने द्वार खोला, उसने देखा कि सामने उसकी स्त्री खड़ी हुई है। वह बड़ी दुर्दशा में थी। उसका सौन्दर्य-पुष्प मुरझा चुका था। वह चिथड़ों में लिपटी हुई, यात्रा से धूलि-धूसरित हो रही थी। उसने अपने अश्रु, लज्जा और भय से तेजहीन नेत्रों से अपने पति की ओर देखा, मूर्च्छा, भूख, प्यास और थकावट के कारण वह द्वार का सहारा ले झुककर खड़ी हो गई। स्त्री को देखते ही व्यापारी स्तब्ध हो गया। उसका शरीर रोमांचित हो उठा और वह आश्चर्य और आनन्द से चिल्ला पड़ा। उसने अपनी स्त्री को गोद में उठा लिया और अन्दर ले जाकर उसे उसी शय्या पर लिटा दिया, जिसका वह परित्याग एवं तिरस्कार कर चुकी थी। आनन्दातिरेक से काँपते

हुए पैरों से जाकर वह अपनी स्त्री के लिए भोजन और जल ले आया। उसने अपनी स्त्री के शरीर में लगी हुई धूलि को धोकर साफ कर दिया। इससे उसकी चिन्ता और आशंका दूर हो गई और उसका चित्त कुछ स्वस्थ हुआ। उस व्यापारी ने अपनी स्त्री के लिए अपशब्दों का प्रयोग न कर उलटे उसके लौट आने के कारण उसे साधुवाद दिया। वह एक साथ हँस भी रहा था और रो भी रहा था। उसके व्यवहार से ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो उसकी स्त्री कभी स्वप्न में भी उससे अलग नहीं हुई थी। वह अपनी स्त्री की थकावट को दूर करने के लिए उसका मनोविनोद करने और उसके शरीर को दबाने लगा। सहसा उसकी दृष्टि स्त्री के पैर पर बने हुए उस चिह्न पर पड़ गई, जो उसके जार व्यापारी-पुत्र के कुंडल से बन गया था। अपनी उंगली को उस चिह्न पर रखकर, भावकुतापूर्ण मुस्कान के साथ उसने अपनी स्त्री से कहा—'यह बेचारा घायल चरण! आखिर इसे विश्रामस्थल मिल ही गया।' स्त्री अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से व्यापारी की ओर चुपचाप देखती रही। सहसा वह हँस पड़ी। इससे उसका हृदय विदीर्ण हो गया और वह तुरन्त ही मर गई। जब उस व्यापारी ने अपनी स्त्री की इस प्रकार शोकजनक मृत्यु होते देखी, तब उसने भी उसके चरणों पर गिरकर उसी का अनुगमन किया।

राजकुमारी! आप मुझे यह बतलाइये कि उस स्त्री का हृदय क्यों विदीर्ण हो गया?" इतना कहकर रसकोश मौन हो गया। इस पर राजकुमारी बोली—"उसका हृदय विदीर्ण हुआ शोक के कारण। उसने देखा कि उसके पति ने उसकी दुश्चरित्रता का प्रतिकार इतनी उदारता से किया। इसके साथ ही उसे उस प्रसंग का भी स्मरण हो आया, जब उसके चरण में घाव लगा था। इससे उसका हृदय एक वेगवती नदी के समान इतने घोर पश्चात्ताप से आप्लावित हो उठा

कि वह उसे सहन नहीं कर सकी। इस कारण उसका हृदय भग्न हो गया और वह मर गई।"

इतना कह चुकने के पश्चात् राजकुमारी कातरता से महाराज की ओर देखती हुई उठी और धीरे से बाहर निकल गई। उसी के साथ निकल गया राजा का हृदय भी। उसके पश्चात् राजा और रसकोश अपने-अपने कक्ष को लौट आए।

दसवाँ दिन

राजा ने रसकोश से कहा—"प्रिय मित्र ! अब तो नौ दिन व्यतीत हो चुके, इस कारण मुझे शंका होने लगी है। यदि मेरी प्रियतमा मुझे न मिली तो मैं तुम्हें कभी क्षमा नहीं कर सकूँगा। अब जब वह मेरी ओर देखती है तो उसका भाव पहले जैसा नहीं जान पड़ता। उसकी उदारतापूर्ण दृष्टि से ऐसा प्रतीत होता है कि मेरी भाँति वह भी वियोग के दुःख का अनुभव कर रही है। अब तुम कोई ऐसा चतुरतापूर्ण प्रश्न सोचो, जिसका वह उत्तर न दे सके। तब तक मैं भी इस चित्र के सहारे यह प्रयत्न करूँगा कि मेरी आत्मा मेरे शरीर से अलग न होने पाए।" इस प्रकार चित्र की ओर देखते-देखते राजा ने अधीरता में रात्रि व्यतीत कर दी। सूर्योदय होते-होते वह फिर उठ पड़ा और रसकोश तथा वाटिका की सहायता से उसने जैसे-तैसे दिन भी काट दिया। सूर्यास्त होने पर राजा और रसकोश पुनः सभाभवन में उपस्थित हुए और वहाँ उन्होंने राजकुमारी को देखा। वह धवल वस्त्र धारण किए हुई थी और उसके कंचुक, मुकुट और अन्य आभूषणों में नीलम जड़े हुए थे। राजकुमारी ने राजा की ओर देखकर एक दीर्घ निःश्वास लिया। उसके सौन्दर्य के जादू से मुग्ध होकर राजा चुपचाप आसन पर गिर पड़ा। तत्पश्चात् रसकोश आगे बढ़कर राजकुमारी के सामने खड़ा हो गया और उसने पुनः कहना प्रारम्भ किया—

"भद्रे ! प्राचीन काल में किसी गाँव में कपिश वर्ण का एक मल्ल

रहा करता था। उसके घर में एक पालतू जानवर था। एक दिन जब वह घर वापस लौटा, तो उसने देखा कि उसका पालतू जानवर बाहर निकल गया है। उसकी खोज करने के लिये वह मार्ग में इधर-उधर दौड़ने-भटकने लगा। अंत में उसने सड़क के किनारे एक कोने में एक मनुष्य को बैठा देखकर उससे पूछा—'क्या आपने मेरे पालतू जानवर को देखा है ?' मनुष्य ने उत्तर दिया—'क्या उसकी गर्दन में रस्सी बँधी हुई थी ?' मल्ल ने कहा—'हाँ'। तब मनुष्य बोला—'वह इधर गया है।' मल्ल आगे बढ़ गया और कुछ दूर जाकर उसने पुनः एक व्यक्ति से वही प्रश्न पूछा। उस व्यक्ति ने कहा—'हाँ, मैंने उसे देखा था। वह दो पैरों पर खड़ा हुआ उस दीवार पर चढ़ने का प्रयत्न कर रहा था।' दूसरे ने कहा—'मैंने तो उसे चारों पैरों से दीवार के सहारे रेंगते हुए देखा था।' तीसरे ने कहा—'मैंने तो उसे तीन पैरों खड़े हुए देखा था और वह अपने चौथे पैर से अपना सिर खुजला रहा था।' इस प्रकार उनकी बातें सुन वह मल्ल और आगे बढ़ गया। तब उसे एक धोबी मिला, जिसने कहा—'वह इधर ही आया था और पानी में अपने मुख को देखकर उसकी ओर मुँह बना रहा था।' और आगे बढ़ने पर उस मल्ल को एक फलवाला मिला। उसने कहा—'मैंने तुम्हारे पालतू जानवर को उस वृक्ष के नीचे बैठे देखा था। वह एक कौए के पंखों को नोच रहा था, जिससे उसके शरीर से रक्त बह रहा था। मैंने उसे मुट्ठी भर चीना बादाम भी दिया था।'

जब मल्ल और आगे बढ़ा तो उसे दो मनुष्य मिले, जो परस्पर वार्तालाप कर रहे थे। मल्ल ने उनसे भी वही प्रश्न किया, तब उनमें से एक बोला—'मैंने उसे देखा था। वह अपने साथी के बालों से जुएँ निकाल रहा था।' दूसरे ने कहा—'बालों का रंग कैसा था ?' मल्ल ने उत्तर दिया—'वही जो मेरे बालों का है।' यह सुनकर दूसरे ने उत्तर दिया—'वह तो उस वृक्ष की एक शाखा में झूल रहा है।'

राजकुमारी ! अब मुझे बतलाइये कि उसका पालतू जानवर कौन सा प्राणी था ?" इतना कहकर रसकोश मौन हो गया। इस पर राजकुमारी ने मुस्कराकर कहा—"वह कोई बन्दर नहीं, अपितु एक बालक था और सम्भवतः उसी का पुत्र।"

इतना कहने के बाद राजकुमारी उठ खड़ी हुई और राजा की ओर घृणा से देखती हुई बड़ी कठिनता से बाहर निकल गई। और उसी के साथ निकल गया राजा का हृदय भी। फिर राजा और रसकोश पुनः अपने-अपने कक्ष को लौट आए।

ग्यारहवाँ दिन

राजा ने रसकोश से कहा—"प्रिय मित्र ! दस दिन तो व्यतीत ही चुके, किन्तु अभी तक राजकुमारी की पराजय नहीं हुई। इस पर भी यदि तुमने आज की कहानी को इतना संक्षिप्त न कर दिया होता तो मैं तुम्हें क्षमा कर सकता था। तुम्हारी कथा प्रारम्भ होते ही समाप्त हो गयी, जिससे मेरा आनन्द बीच में ही समाप्त हो गया। इस समय मेरी दशा उस प्यासे व्यक्ति की सी है, जिसे थोड़ा सा ही जल पीने को मिला हो। और कुछ नही तो तुम अपनी कथाओं का ही विस्तार करते रहो, जिससे मुझे प्रतिदिन और देर तक उसे देखने का अवसर मिले। नहीं तो मैं बिलकुल ही नष्ट हो जाऊँगा। अब तो मुझे दूसरी रात भी वियोग में ही व्यतीत करनी पड़ेगी। इसके लिये मुझे एकमात्र इस चित्र का ही सहारा है, किन्तु राजकुमारी के स्वरूप को देखते-देखते इसकी भी शक्ति दिन-पर-दिन क्षीण होती जा रही है।" इस प्रकार जैसे-तैसे राजा ने वह रात्रि भी व्यतीत की। सूर्योदय होते ही वह फिर उठ गया और बड़ी कठिनाई से उसने रसकोश और वाटिका की सहायता से दिन व्यतीत किया। सूर्यास्त होने पर वह रसकोश के साथ पुनः सभाभवन में पहुँचा। वहाँ उन्होंने सिंहासन पर बैठी हुई राजकुमारी को देखा। वह हरित वर्ण का वस्त्र पहने हुए थी और उसके कंचुक,

मुकुट और आभूषणों में चन्द्रकान्त मणियाँ जड़ी हुई थीं। उसने राजा की ओर प्रेमभरी दृष्टि से देखा। उसकी सुन्दरता के जादू से मुग्ध राजा अवाक् होकर आसन पर गिर पड़ा। तदनन्तर रसकोश आकर राजकुमारी के सम्मुख खड़ा हो गया और उसने पुनः कहना प्रारम्भ किया—

"भद्रे ! प्राचीन काल में किसी देश में एक राजा रहता था। उसके यहाँ एक कंचुकी था, जो एक अन्य पुरुष की स्त्री से प्रेम करता था। वह स्त्री भी कुलटा थी और उसके प्रेम का प्रतिदान करती रहती थी। स्त्री का पति उस पर कड़ी निगरानी रखता था, जिससे वे दोनों कभी एकान्त में नहीं मिल पाते थे। जब कंचुकी ने देखा कि वह उस स्त्री से इस प्रकार नहीं मिल सकता, तब उसने एक युक्ति निकाली। उसने स्त्री के पति से प्रगाढ़ मित्रता का स्वांग रचना प्रारम्भ कर दिया और उससे सावधान रहने लगा। वह योग विद्या में भी पारंगत था। अतः अपने अलौकिक कृत्यों से भी वह उसकी सद्भावना को प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगा। एक दिन उस कंचुकी ने स्त्री के पति से कहा—'मैं अपने योगबल से दूसरों के शरीर में प्रवेश करना जानता हूँ। यदि आप को इसकी उत्सुकता हो तो मैं आप में भी ऐसा करने की शक्ति उत्पन्न कर सकता हूँ।' स्त्री का पति बड़ा मूर्ख था। वह कंचुकी के अभिप्राय को न समझ सका और तुरन्त ही इसके लिए तैयार हो गया।

एक रात कंचुकी स्त्री के पति को श्मशान में ले गया। वहाँ उसने ऐसा अभिचार किया कि दोनों के शरीर छूट गए। किन्तु जैसे ही स्त्री के पति ने अपने शरीर को छोड़ा, वैसे ही कंचुकी स्वयं उसमें प्रविष्ट हो गया। बिना एक क्षण भी नष्ट किये वह अपनी प्रियतमा के घर दौड़ गया। अब वह उसके पति के रूप में था और अपनी युक्ति की सफलता पर फूला नहीं समा रहा था। स्त्री के पति ने देखा कि उसका तो शरीर भी छीन लिया गया है। इसलिये वह चिल्लाने लगा—

'हाय, मैं तो लुट गया।' दूसरा कोई चारा तो था ही नहीं, इसलिये इच्छा न होते हुए भी उसे (स्त्री के पति को) कंचुकी के शरीर में प्रवेश करना पड़ा, जो उसके पास ही खाली पड़ा हुआ था। वह अत्यन्त शोक के साथ धीरे-धीरे श्मशान से अपने घर वापस लौट आया। उसके मन में नाना प्रकार के विचार चक्कर काट रहे थे। इसलिये संयोगवश उसके पैर उसे उस कंचुकी के घर की ओर ही ले गए, जिसके शरीर को उसने धारण कर लिया गा।

इधर इस बीच उसकी कामातुर स्त्री को अच्छा अवसर मिल गया। उसका पति (अर्थात् वह स्वयं) तो घर पर था नहीं, इसलिये जब वह अपने प्रेमी कंचुकी के वियोग को सहन नहीं कर सकी तो अभिसारिका की भाँति उसके घर जा पहुँची। जब कंचुकी उसके पति के शरीर में उसके घर आया तो वह वहाँ उपस्थित न थी। वह रात भर अधीरता पूर्वक अपने भाग्य को कोसता रहा। इधर कंचुकी के रूप मे अपने पति के कंचुकी के घर पहुँचने के पूर्व ही वह स्त्री भी वहाँ पहुँच गई। जब वह घर के अन्दर गया, तब उसे अपनी स्त्री को देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ। स्त्री उसे पहचान न सकी। उसने उसे अपना प्रेमी ही समझा, इसलिये दौड़ कर उसके पास गई और उसके गले में अपनी भुजाओं को डालकर बोली—'अन्ततोगत्वा तुम मुझे मिल ही गए।' इसे सुन कर वह मूर्ख गद्गद् हो गया। उसकी स्त्री बहुत समय से उसके साथ दुर्व्यवहार करती चली आ रही थी, इसलिये उसके इस साधारण व्यवहार को देखकर आनन्दावेश में वह क्षणभर के लिए सब कुछ भूल गया। वह रात भर उसी के साथ रह कर अपनी पत्नी के सहवास का आनन्द प्राप्त करता रहा।

प्रातःकाल होते ही वह स्त्री उठ गई। अभी (कंचुकी के शरीर में) उसका पति सोया हुआ था, इसलिये वह चुपके से अपने घर को वापस चली गई। जब उसके पति के शरीर में वास्तविक कंचुकी अपने घर लौटा तो उसे यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि स्त्री का पति उसके

शरीर को धारण किए हुए उसके विस्तर पर पड़ा सो रहा है। इसलिये उसने उसे जगाया और क्रोधपूर्वक कहा—'आप मेरे विस्तर पर क्या कर रहे हैं।' स्त्री के पति ने उत्तर दिया—'तुम मेरे शरीर को लेकर क्यों चले गए थे ?' कंचुकी बोला - 'अब बहुत हो चुका। मुझे तुम्हारे घृणित शरीर में नरक यातनाएँ भोगनी पड़ी हैं, इसलिये मैं उसे जला देना चाहता हूँ।' स्त्री का पति भय से काँपने लगा। उसने बड़ी नम्रता से कहा—'मैं आपके शरीर को छोड़कर जाता भी कहाँ ? मैं तो बिल्कुल ठंडा पड़ गया था। जितना शीघ्र हो सके आप मेरे शरीर को वापस करके अपना शरीर ले लीजिये।' कंचुकी स्त्री के पति को श्मशान में ले गया। वहाँ उसने अपने मंत्र-बल से उसका शरीर छुड़वा दिया। वे दोनों पुनः अपने-अपने शरीर में चले गये।

अपने शरीर में प्रवेश करते ही स्त्री का पति मानो स्वप्न से जाग उठा। उसे सब कुछ स्मरण हो आया। उसने चिल्लाकर कंचुकी से कहा—'रे वंचक ब्राह्मण ! तूने ही मेरी स्त्री का आलिंगन किया था।' कंचुकी ने उत्तर दिया—'मुझे तुम्हारी स्त्री से क्या प्रयोजन ?' किन्तु स्त्री का क्रुद्ध पति उसे पकड़ कर घसीटता हुआ राजकर्मचारियों के सामने ले गया। उसने अपनी स्त्री को भी बुलवाया और न्यायाधिकारी से सम्पूर्ण वृत्तान्त बतलाया। उसने कहा—'आप इन दुष्टों को दंड दीजिए, क्योंकि इन्होंने मेरे सम्मान का अपहरण किया है।' कंचुकी बोला—'मैंने तुम्हारी स्त्री का स्पर्श भी नहीं किया है।' स्त्री ने कहा—'आप शिकायत किस बात की कर रहे हैं। क्या मैंने आपका ही आलिंगन नहीं किया था ?' न्यायाधिकारी परेशान था, उसकी समझ में नहीं आया कि क्या करें।

राजकुमारी ! अब आप ही इस विवाद का निर्णय करें।" इतना कहकर रसकोश चुप हो गया। राजकुमारी ने कहना प्रारम्भ किया—"कंचुकी बड़ा ही वंचक था। उसके दुष्ट होने में कोई सन्देह नहीं, किन्तु न्याय उसे दंडित नहीं कर सकता। अभी उसने अपनी

योजना का विचार मात्र किया था, उसे कार्यान्वित नहीं कर सका था। स्त्री ने अपराध तो अवश्य किया, किन्तु अपने पति की आँखों के सामने और उसी की अनुमति से। उसके पति ने उसके कार्य की पुष्टि भी कर दी थी। अपमान और उपहास के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु का अधिकारी स्त्री का पति भी नहीं है। क्योंकि वह तो स्वयं अपने दुर्भाग्य का निर्माता कहा जा सकता है। वह अपनी वासना के इतना वशीभूत हो गया था कि उसने अपने सम्मान को नष्ट करने के लिये स्वयं ही अपनी स्त्री को उत्साह और सहायता प्रदान की। यही नहीं, उसे यह भली भाँति ज्ञात था कि वह क्या करने जा रहा है। इसलिये इन तीनों को ही बिना किसी दंड के मुक्त कर देना चाहिए।"

इतना कह चुकने के पश्चात् राजकुमारी उठकर अनिच्छा पूर्वक चली गई और उसी के साथ चला गया राजा का हृदय भी। फिर राजा और रसकोश अपने-अपने कक्ष को वापस चले गए।

बारहवाँ दिन

इस बार राजा ने रसकोश से कहा—"प्रिय मित्र! मेरी प्रियतमा की सुन्दरता मुझे मन्त्र मुग्ध सा किये रहती है और मेरे कानों को अवरुद्ध कर देती है। जिससे मैं तुम्हारी कथाओं को बहुत थोड़ा ही सुन पाता हूँ। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह असाधारण बुद्धिमती है। यही कारण है कि तुम उसे अभी तक परास्त नहीं कर सके हो। अब तो ग्यारह दिन समाप्त हो गए हैं और केवल दस ही दिन शेष रह गए हैं। यदि मैं उसे न पा सका तो तुम्हें कभी क्षमा नहीं कर सकूँगा। दिन-पर-दिन उसकी दृष्टि में दयाभाव आता जा रहा है और उसके वियोग का एक-एक क्षण मेरे लिये उत्तरोत्तर दुःखदायी होता जा रहा है। इधर राजकुमारी के चित्र की यह क्षमता भी घटती जाती है कि वह मुझे उसकी अनुपस्थिति में सान्त्वना दे सके। अब तो इसमें सन्देह ही है कि मैं कल तक भी जीवित रह सकूँगा।" चित्र की ओर

ध्यानपूर्वक देखते-देखते राजा ने बड़ी अधीरता से रात बिताई। सूर्योदय होते ही वह फिर उठ पड़ा और रसकोश तथा वाटिका की सहायता से उसने ज्यों-त्यों करके दिन भी बिता दिया। सूर्यास्त होने पर वह रसकोश के साथ पुनः सभा भवन में जा पहुँचा। वहाँ उन्होंने सिंहासन पर बैठी हुई राजकुमारी को देखा। वह गुलाबी वस्त्र पहिने हुए थी। उसके कंचुक, मुकुट और आभूषणों में गोमेद जड़े हुए थे। अन्दर आते हुए राजा को देखने के लिये आज वह स्वयं उत्सुकता से आगे बढ़ गई थी। उसकी सुन्दरता के जादू के आकर्षण से अभिभूत हो राजा चुपचाप आसन पर बैठ गया। रसकोश आगे बढ़कर राजकुमारी के सामने खड़ा हो गया और कहने लगा—

"भद्रे! एक गजराज था। वह सभी जंगली हाथियों का यूथपति था। वह वन में इन्द्र के वज्र की भाँति इधर-उधर दौड़ता रहता था। जब वह झाड़ियों और छोटे-छोटे वृक्षों को तोड़ता था, तब उसके विस्तीर्ण गंडस्थल से मदजल की वर्षा होने लगती थी। एक समय जी भरकर क्रीड़ा कर चुकने के पश्चात् वह वन पथ पर इस प्रकार मन्थर गति से जा रहा था, जैसे कोई पर्वत चलायमान हो गया हो। अन्य हाथियों का यूथ उसके पीछे-पीछे चल रहा था। एक बल्मी के निकट आकर उसने अपने दाँतों को उसमें अड़ा दिया और पृथ्वी को खोद डाला। फिर आगे बढ़कर वह एक पोखर के तट पर विश्राम करने लगा। उसने अपनी सूँड़ में भरे हुए स्वच्छ जल से अपने दोनों पार्श्वों को गीला कर दिया। पोखर के एक तट पर अपने दाँतों को गड़ाकर वह एक विशाल वृक्ष के सहारे झुककर खड़ा हो गया। उसके नेत्र बन्द थे, बड़े-बड़े कान खड़े थे, सूँड़ नीचे की ओर लटक रही थी और वह धीरे-धीरे झूम रहा था। उसके गहरे श्याम वर्ण के शरीर पर उसके श्वेत दन्तद्वय सघन मेघों के नीचे जाती हुई हंसावलियों के समान प्रतीत हो रहे थे।

दीमक अपनी बल्मी के भंग हो जाने से व्याकुल हो उठे थे। उनमें से सहस्रों दीमक गजराज के द्वारा मार भी डाले गए थे। जो

बच गए थे, उन्होंने आपस में कहा—'यह क्या ? क्या हम लोग इसीलिये हैं कि यह दुष्ट हाथी अपनी चंचल क्रीड़ा से हमारा संहार कर दे ?' तत्पश्चात् उन्होंने हर्जाना की माँग के लिये हाथी के पास एक प्रतिनिधि-मंडल भेजने का निश्चय किया और इसके लिये अपने में से सात बुद्धिमान दीमकों को चुना। वह प्रतिनिधि-मंडल रेंगता हुआ उस स्थान तक गया, जहाँ वृक्ष के सहारे हाथी झुका हुआ खड़ा था। धीरे-धीरे वह हाथी के कानों के बराबर पहुँच गया। प्रतिनिधिमंडल ने हाथी को दीमकों का सन्देश दिया। उसने कहा—'हे गजराज ! दीमकों ने मुझे आपके पास उन दीमकों का हर्जाना माँगने के लिये भेजा है, जिन्हें आपने मार डाला है। यदि आप हरर्जाना नहीं देंगे तो युद्ध के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं रह जायेगा।' यह सुनकर हाथी ने अपने अपांगों से इधर-उधर देखा। उसे वृक्ष के तने के ऊपर दीमकों की एक पंक्ति दिखाई दी। उसने अपने मन में कहा—'यह बड़े मजे की बात है। ये क्षुद्र दीमक हम हाथियों का कर ही क्या सकते हैं ?' यह सोचकर वह अपनी सूँड़ में पानी भर उसे दीमकों के ऊपर फेंकने लगा। इससे बहुत से दीमक नष्ट हो गए।

अपने साथियों का संहार देखकर दीमकों को क्रोध आ गया। उन्होंने रात होने तक प्रतीक्षा की। रात होते ही वे हजारों के झुंड में भूमि से निकलकर सोते हुए हाथियों के समीप पहुँच गए। उन्होंने हाथियों के पैरों की उँगलियों के ऊपर की खाल और उनके तलवों को कुतर दिया। प्रातःकाल होने पर जब हाथियों ने चलना-फिरना आरम्भ किया तो उन्हें पता चला कि उनके पैर सूजकर बेकाम हो गए हैं। वे क्रोध और पीड़ा से चिघाड़ते हुए वन में दौड़-दौड़कर दीमकों की बल्मियों को तोड़ने लगे। दीमक पहले से ही भूमि के अन्दर चले गए थे। इसलिये हाथियों ने दीमकों तो पाया नहीं, उलटे जितना ही वे इधर-उधर दौड़े, उतना ही उनके पैर और घायल हो गए। जब हाथियों ने देखा कि उनके सभी उपाय व्यर्थ हो गए हैं, तब उन्हें अपने भविष्य के विषय

में भय उत्पन्न हो गया और उन्होंने दीमकों के साथ सन्धि करने का निश्चय किया। एक भी दीमक को भूमि के ऊपर न पाकर उन्होंने एक चूहे को भूमि के अन्दर भेजा। वह हाथियों के संदेश को दीमकों के पास ले गया। किन्तु दीमकों ने उत्तर दिया—'हम हाथियों के साथ तब तक कोई सन्धि करने को तैयार नहीं हैं, जब तक वे हमारे दूतों को नष्ट करने के लिये अपने राजा को दंड नहीं देंगे।' चूहे ने हाथियों के समीप लौट कर दीमकों का उत्तर सुनाया। जब हाथियों ने देखा कि इसके अतिरिक्त उनके पास और कोई चारा ही नहीं है तब वे इस पर राजी होगए।

तत्पश्चात् हाथियों का राजा अपने कानों को नीचे लटकाए हुए दीमकों के सामने आत्मसमर्पण करने के लिये अकेला ही वन में आया। दीमकों ने शमीलता से कहा—'इस दुष्ट को बाँध लो, अन्यथा हम तुम्हारी जड़ों को काटकर तुम्हें नष्ट कर देंगे।' यह सुनकर शमीलता ने हाथी को चारों ओर से ऐसा जकड़ लिया कि वह हिल भी न सका। दीमक धीरे-धीरे हजारों के झुन्ड में हाथी के समीप आ गए और उसे मिट्टी से ढक दिया, जिससे वह एक पहाड़ सा दिखाई पड़ने लगा। दीमकों ने हाथी के मांस को खा डाला। अब केवल उसकी सूँड़ और हड्डियाँ ही बच रही थीं। दीमक वन में ससम्मान रहने लगे और हाथियों ने अपना दूसरा राजा चुन लिया।

राजकुमारी! आप ही बतलाइए कि इस कथा में नीति-दोष क्या है?" इतना कहकर रसकोश मौन हो गया। राजकुमारी कुछ समय तक विचार करके बोली—"संगठित होकर भी दुर्बल व्यक्ति बलवान से बलवत्तर नहीं हो सकता। हाथी-हाथी ही रहा, दीमक दीमक ही। किन्तु किसी बलवान में कितना बल है इसका अनुमान उसके क्षीणांशों से ही लगाया जा सकता है। यदि हाथियों को यह सब ज्ञात होता और उन्होंने अपने पैरों की रक्षा की होती तो वे दीमकों के सभी कृत्यों का उपहास कर सकते थे। इस प्रकार अकेला एक ही हाथी संसार भर के दीमकों का सामना कर सकता था।"

इतना कह कर राजकुमारी उठ खड़ी हुई। वह राजा की ओर दुःख से देखती हुई धीरे-धीरे बाहर चली गयी और उसी के साथ चला गया राजा का हृदय भी। फिर राजा और रसकोश अपने-अपने कक्षों को लौट गए।

तेरहवाँ दिन

राजा ने रसकोश से पुनः कहा—"यदि मैं प्रेम और अहम्मन्यता से अन्धा नहीं हो गया हूँ तो मैं कह सकता हूँ कि राजकुमारी के हाव-भाव से यह जान पड़ता है कि वह हमें चाहता है। किन्तु दुःख यह है कि अब तो बारह दिन बीत गए हैं और केवल नौ ही दिन शेष हैं। तुम सावधानी से रहना, ऐसा न हो कि मैं अपनी प्रियतमा से हाथ धो बैठूँ। अब तो मुझे राजकुमारी के चित्र से भी शान्ति नहीं मिलती, क्योंकि दिन-पर-दिन राजकुमारी से उसकी समता घटती जाती है। यह चित्र मेरी ओर भर्त्सनापूर्वक देखता है, जबकि राजकुमारी मुझे प्यार से ही देखती है। मैं नहीं जानता कि इसके होते हुए भी मैं प्रातः काल तक वियोग को कैसे सहन कर सकूँगा।" रात भर चित्र को देखते-देखते राजा ने बड़ी ग्लानि की अवस्था में रात्रि व्यतीत की। सूर्योदय होते ही वह उठ पड़ा और दिन की लम्बी घड़ियाँ भी उसने रसकोश तथा वाटिका की सहायता से बिता दीं। सूर्यास्त होने पर वह रसकोश के साथ फिर दरबार में गया। वहाँ उन्होंने राजकुमारी को देखा, वह अपने सिंहासन पर बैठी हुई थी। उसके वस्त्र नारंगी रंग के थे और उसके कंचुक, मुकुट और आभूषणों में पद्मरागमणियाँ जड़ी हुई थीं। जैसे ही राजकुमारी ने राजा की ओर देखा, वैसे ही ऐसा प्रतीत हुआ, मानों उसके मुख से एक छाया विलीन हो गई हो। राजकुमारी की सुन्दरता से मुग्ध होकर राजा चुपचाप आसन पर बैठ गया। रसकोश आगे बढ़कर राजकुमारी के सामने खड़ा हो गया और कहने लगा—

"भद्रे! एक समय की बात है कि एक काफिले का नायक एक

बहुत बड़े रेगिस्तान को पार कर रहा था। चलते-चलते सहसा उसकी दृष्टि ऊपर की ओर गई। उसने देखा कि दूर पर एक नगर की दीवारें दिखाई पड़ रही हैं और नगर के निकट ही एक स्वर्गिक नीलिमा युक्त सुन्दर जलाशय है। यह देखकर वह चकित रह गया। उस जलाशय के अमृत की तृष्णा और नगर के लिए उत्कट चाह से उसका हृदय विकल हो उठा। उसने अपने ऊँटों को उसी दिशा में हाँक दिया। वह वहाँ तक पहुँच भी न पाया था कि सहसा नगर उसके सामने से अदृश्य हो गया। अब वह रेगिस्तान में अकेला ही रह गया। वहाँ न तो जल ही था और न नगर, था केवल सूर्य की किरणों से तप्त बालू का मैदान। उसने अपने मन में कहा—'यह तो कोई बड़ी विचित्र वस्तु है। मैं अपनी सारी सम्पत्ति लगाकर भी इस नगर को अपने हाथ से नहीं जाने दूँगा।' उसके अनुचरों ने उसे बहुत समझाया—'हुजूर! यह धोखा है, यह मृगतृष्णा है, वहाँ न तो जल है, न कोई नगर ही।' किन्तु उसने अनुचरों की बात का विश्वास नहीं किया। वह उसी जगह रुक गया और दूसरे दिन तक प्रतीक्षा करता रहा। दूसरे दिन उसी समय उसे वही नगर फिर दिखाई दिया।। वह अपने सबसे वेगवान् ऊँट पर सवार होकर घंटों तक रेगिस्तान में उसका पीछा करता रहा। किन्तु उसे पकड़ न सका। पहले ही की तरह वह नगर फिर विलीन हो गया।

कारवाँ के नायक ने अपनी यात्रा को स्थगित कर दिया और रेगिस्तान में ही डेरा डाल दिया। वह प्रतिदिन जल से युक्त सुन्दर नगर का पीछा करता था, किन्तु वह उसके निकट कभी न पहुँच सका। जितना ही वह उस नगर का पीछा करता जाता था, उतना ही वहाँ तक पहुँचने की उसकी इच्छा तीव्र होती जाती थी। यहाँ तक कि वह संसार की अन्य सभी वस्तुओं को भूल गया।

धीरे-धीरे कारवाँ के नायक की उपेक्षा के कारण उसका व्यापार

नष्ट होने लगा। जब उसकी इस करतूत का पता उसके सम्बन्धियों को चला तो वे रेगिस्तान में ही आकर उससे बोले—'यह तुम क्या कर रहे हो? तुम पर क्या पागलपन सवार है! क्या तुम्हें इतना भी ज्ञान नहीं है कि यह मृग-तृष्णा है? तुम छाया का पीछा करनें में अपना समय नष्ट कर रहे हो और तुम्हारी सम्पत्ति नष्ट होती जा रही है।' नायक ने उत्तर दिया—'प्रत्यक्ष के लिये प्रमाण की क्या आवश्यकता? क्या मैं नगर और उसके जल को वैसे ही नहीं देख रहा हूँ, जैसे स्वयं तुम लोगों को देख रहा हूँ? तब यह धोखा कैसे हो सकता है?' यह सुनकर नायक के सम्बन्धियों को क्रोध आ गया। उन्होंने कहा—'अरे मूर्ख! यह मृग-तृष्णा है।' नायक ने प्रतिवाद किया—'यदि यह कुछ है ही नहीं, तो मैं इसे देख कैसे सकता हूँ? आप मुझे यह समझाइए।' उसके सम्बन्धी उसको कुछ भी समझा न सके और उसे बुरा भला कहकर उसका उपहास करने लगे। वे उसे रेगिस्तान में अकेला ही छोड़कर वहाँ से चले गए। वह वहीं रहने लगा। वह अपना सर्वस्व ऊँटों को खरीदने में ही लगाता जा रहा था। प्रत्येक दिन वह उस नगर का पीछा करता था, किन्तु प्रत्येक दिन वह नगर अन्तर्धान हो जाता था। इस प्रकार जब तक उसकी सारी सम्पत्ति नष्ट नहीं हो गई, तबतक वह यही करता रहा। उसके सभी ऊँट एक-एक कर मरते गए। अन्त में वह भी रेगिस्तान में भटकते-भटकते मर गया और सूर्य ने उसकी अस्थियों को सुखाकर सफेद कर डाला।

धीरे-धीरे कारवाँ के नायक की कथा विदेशों में फैल गई। लोगों ने कहा—'इसमें असम्भव क्या है? रेगिस्तानी सूर्य ने उसे पागल बना दिया था।' किन्तु उसके सम्बन्धी कहते थे—'बुरा हो उस पागल मनुष्य का। उसने अपने पागलपन से हम लोगों को नष्ट कर डाला।' यह कथा एक संन्यासी ने भी सुनी। वह मन ही मन हँस पड़ा और कहने लगा—'मृगतृष्णा ही संसार के विनाश का हेतु है। प्रत्येक घट अपने से छोटे घट से यही कहता है—तुच्छ मिट्टी, तुझे

धिक्कार है ।'

राजकुमारी ! आप ही बतलाइए कि उस तपस्वी के कहने का अभिप्राय क्या था ।" इतना कहकर रसकोश चुप हो गया । राजकुमारी बोली—"कारवाँ के नायक के सम्बन्धी उसके पागलपन को दोषी ठहराते थे, क्योंकि वह मृगतृष्णा को ही वास्तविक वस्तु समझता था । उन्हें क्या मालूम कि वे स्वयं उससे कम पागल नहीं थे । वे भी तो उसी की भाँति इस संसार और इसकी नश्वर सम्पत्ति को सत्य समझते थे और छाया के समान उसके पीछे-पीछे दौड़ा करते थे । यह संसार माया के अतिरिक्त और है ही क्या ? वे सभी उस बड़े घट की भाँति थे, जो छोटे घटों को 'तुच्छ मिट्टी' कहकर उनका तिरस्कार करता है ।"

इतना कहकर राजकुमारी उठ खड़ी हुई । वह राजा की ओर करुण दृष्टि से देखती हुई बाहर चली गई और उसी के साथ चला गया राजा का हृदय भी । फिर राजा और रसकोश अपने-अपने कक्ष को वापस आ गये ।

चौदहवाँ दिन

राजा ने रसकोश से पुनः कहा—"प्रिय मित्र ! यह दिन भी नष्ट हो गया । अब तो केवल आठ ही दिन शेष रह गए हैं । प्रतिदिन वियोग की घड़ी मेरे लिये अधिकाधिक भयावह होती जा रही है और राजकुमारी की अनुपस्थिति का समय अधिकाधिक असह्य होता जा रहा है । इस चित्र का गुण चन्द्रमा की भाँति प्रतिदिन क्षीण ही होता जा रहा है, और यह मेरे आत्मा को पूर्ण अन्धकार में छोड़ जाने की आशंका उत्पन्न कर रहा है । राजकुमारी के विरह में संपूर्ण जीवन बिताने की तुलना में वियोग की एक रात है ही क्या ?" यह सोचकर राजा ने चित्र की ओर देखते-देखते बड़ी अधीरता के साथ रात्रि व्यतीत की । तदुपरान्त सूर्योदय होते ही वह फिर उठ पड़ा । उसने रसकोश

तथा वाटिका की सहायता से जैसे-तैसे दिन भी काट दिया। सूर्यास्त होने पर वह रसकोश के साथ फिर दरबार में जा पहुँचा। वहाँ पहुँच कर उन दोनों ने राजकुमारी को एक सिंहासन पर बैठी हुई देखा। वह श्वेत वस्त्र धारण किए हुए थी। उसके मुकुट तथा अन्य आभूषणों में वैदूर्यमणियाँ जड़ी हुई थीं। राजा को देखकर राजकुमारी का हृदय स्पन्दित हो उठा। राजा भी राजकुमारी की सुन्दरता से मुग्ध होकर चुपचाप आसन पर बैठ गया। रसकोश आगे बढ़कर राजकुमारी के सामने खड़ा हो गया और उसने फिर कहना प्रारम्भ किया।

"भद्रे ! प्राचीन काल में एक राजा था, जो संसार भर से दुर्लभ वस्तुओं का संग्रह किया करता था। वह इन्हें किसी भी मूल्य पर खरीद लेता था। उसका महल देश-देशान्तरों से आए हुए व्यापारियों का आश्रय बन गया था। वहाँ वे उसी प्रकार आ-आकर एकत्र होते थे, जैसे नदियाँ सागर में एकत्र हुआ करती हैं। एक दिन राजमहल में एक व्यापारी आया। उसने राजा से कहा—'राजन् ! मैं आपके लिये एक ऐसी वस्तु लाया हूँ, जिसके समान दुर्लभ और सुन्दर वस्तु तीनों लोकों में भी नहीं है। मैं आपकी दयालुता को जानता हूँ। इसलिये अपने जीवन को विपत्ति में डालकर भी मैंने इसे आपके लिये सँजोकर रखा है।' तदनन्तर व्यापारी ने एक छोटे डिब्बे में से हाथी-दाँत का बना हुआ एक प्याला निकाला। वह हिम के समान धवल था, किन्तु उसके चारों ओर एक लोहित रेखा बनी हुई थी। व्यापारी ने प्याले को दिखलाते हुए कहा—'यह वही प्याला है, जिससे लंका के राजा की बिम्बोष्ठा नामक पुत्री प्रतिदिन मदिरा पान किया करती थी। कहने को तो वह राक्षसी है, किन्तु उसकी सुन्दरता तीनों लोकों में अतुलनीय है। उसकी गढ़न इतनी सुडौल है कि ऐसा प्रतीत होता है, जैसे अन्य सभी स्त्रियों के सुन्दरतम अंगों को अलग-अलग एकत्र करके ही उसके शरीर की रचना की गयी हो। उसकी सम्पूर्ण

सुन्दरता की पराकाष्ठा उसके मुख में है। रक्त से भी लाल उसके अधरों की तुलना में सिन्दूर भी पीला दिखाई पड़ता है। जो भी इन अधरों को देखता है, वही वासनाभिभूत हो उठता है और उसके मुख का रंग फीका पड़ जाता है। बिम्बोष्ठा जिस वस्तु को भी अपने अधरों से स्पर्श कर लेती है, उस पर सदैव के लिए दाड़िम की-सी लाली अंकित हो जाती है। आप तो देख ही रहे हैं कि इस प्याले का किनारा उसके अधरों के स्पर्श से एक ऐसे रंग में रंग गया है, जिसकी तुलना सृष्टि में किसी भी वस्तु से नहीं हो सकती। मैंने बिम्बोष्ठा के द्वारपाल को बहुत बड़ी धनराशि उत्कोच के रूप में देकर इसे चुराया है। इसे लाते समय सदैव मेरे प्राणों का भय बना ही रहा है। अब मैं इसे महाराज की सेवा में भेंट लाया हूँ।' प्याले की अद्वितीयता और असाधारण सुन्दरता को देखकर राजा आनन्द से गद्गद् हो उठा। उसने अपने कोषाध्यक्ष को आदेश दिया कि वह व्यापारी को उस धन का दसगुना देकर प्याला ले ले, जितना उसने द्वारपाल को दिया था। तत्पश्चात् उसने व्यापारी को विदा कर दिया।

संयोग से राजा और व्यापारी के वार्तालाप के समय राजा का पुत्र भी उपस्थित था और वह व्यापारी की बातचीत को सुन रहा था। उसके हृदय में बिम्बोष्ठा के लिये प्रबल वासना जाग्रत हो उठी। जब वह रात में सोने गया तो उसके मस्तिष्क में उसके अतिरिक्त और कोई विचार ही न था। जब वह सो गया तो उसने एक स्वप्न देखा। स्वप्न में उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह एक घोड़े पर सवार है। घोड़ा अबाध गति से सरपट चला जा रहा है। चलते-चलते वह समुद्र के तट पर जा पहुँचा। वहाँ पहुँच कर वह शीघ्र ही घोड़े से उतर गया और एक जहाज में बैठकर लंका के लिये चल पड़ा। उसने जहाज से बहुत शीघ्र ही सागर पार कर लिया। उस पार पहुँचकर वह जहाज से कूद पड़ा और सड़कों पर दौड़ता हुआ राक्षस कुमारी के प्रासाद में पहुँच गया। जिस समय राजकुमार वहाँ पहुँचा, उस समय आकाश में एक

ओर सूर्य अस्त हो रहा था और दूसरी ओर चन्द्रमा का उदय हो रहा था, जो एक दूसरे सूर्य की भाँति प्रतीत हो रहा था। उसने अपनी धवल चन्द्रिका से प्रासाद के अग्रभाग को आलोकित कर दिया था। राजकुमार ने आश्चर्य के साथ देखा, सामने की ओर छज्जे पर वही राक्षस-पुत्री खड़ी थी। उसका प्रतिद्वन्दी चन्द्रमा उसमें और भी निखार उत्पन्न कर रहा था। उसके स्वर्णिम मुख-मंडल पर दोनों अधर, अग्नि की दो पत्तियों की भाँति देदीप्यमान् थे। उन अधरों की सौन्दर्याभा को न सहन कर सकने के कारण राजकुमार मूर्छित होकर गिर पड़ा। मूर्छावस्था में भी अबाध रूप से वह उन्हीं अधरों को देखता रहा। उसे ऐसा अनुभव हुआ कि राक्षस-कुमारी के दोनों अधर निरन्तर बढ़ते जा रहे हैं और वे बढ़कर एक बड़े पर्वत के समान हो गए हैं। कुछ ही समय में वे असंख्य युग्मों में टूट कर आकाश में नक्षत्रों के समान छिटक गए। अब उसे ऐसा अनुभव होने लगा कि वे छोटे छोटे युग्म धीरे-धीरे सब ओर से आकर उसका चुम्बन करने लगे हैं। उसे सहसा अपने सामने पुनः वही प्रासाद दिखाई पड़ा। उसने उसमें प्रवेश किया। वहाँ उसने एक विशाल कक्ष के एक सिरे पर राक्षस-कुमारी को देखा। वह दौड़कर उसके समीप गया और उसके पैरों पर गिर पड़ा। राजकुमारी, राजकुमार के ऊपर झुक गई और अपने अधरों को उसके कपोल के निकट ले गई। उसके अधर जैसे-जैसे राजकुमार के कपोल के निकट आते जाते थे, वैसे-वैसे वे विकराल जबड़ों के समान होते जाते थे। उसके दाँत हाथीदाँत के समान शुभ्र और आरी के समान तीक्ष्ण थे और उनके बीच में एक काला गड्ढा था। सघन अन्धकार में राक्षस-कुमारी के अधरों को अपने समीप आते देखकर वह जोर से चिल्लाने लगा और उसी चिल्लाहट में वह जाग उठा।

राजकुमारी ! आप ही बतलाइये कि वह राजकुमार चिल्लाया

क्यों ?" इतना कहकर रसकोश मौन हो गया। राजकुमारी ने मुस्कुराते हुए कहा—"वह भयभीत हो गया कि वह राक्षसपुत्री कहीं उसे काट न ले।"

इतना कहकर राजकुमारी उठ खड़ी हुई। वह कामुक दृष्टि से राजा की ओर देखती हुई चली गई और उसी के साथ चला गया राजा का हृदय भी। तदनन्तर राजा और रसकोश अपने कक्ष को लौट आए।

पन्द्रहवाँ दिन

राजा ने रसकोश से कहा—"प्रिय मित्र! वह व्यापारी झूठा था। क्योंकि किसी के भी अधर मेरी प्रेयसी के अधरों की समता नहीं कर सकते। आह! उसकी मुस्कान की मधुरता मेरे मन में कितनी कटुता घोल रही है! वह बड़ी सावधानी से तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देती जाती है और इस प्रकार प्रतिदिन मुझे अधिकाधिक निराश करती जाती है। अब केवल सात ही दिन शेष रह गए हैं। उसके जिस सौन्दर्यामृत का मैं पान किया करता हूँ, उसको खो देने का विचार ही मेरे लिये हलाहल के समान है। अब तो मुझे इस चित्र से घृणा होती जा रही है। क्योंकि यह मेरा उपहास करने लगा है। अतः अब वियोग का समय काटने का कोई सहारा न रह जाने के कारण प्रातः काल होने से पहले ही मेरा जीवन समाप्त हो जायगा।" इस प्रकार उस हताश राजा ने ज्यों-त्यों करके अत्यन्त अधीरता से चित्र की ओर देख-देखकर वह रात्रि भी व्यतीत की। सूर्योदय होने पर वह फिर उठ पड़ा और रसकोश तथा वाटिका की सहायता से उसने बड़ी कठिनाई से दिन बिताया। सूर्यास्त होने पर राजा और रसकोश पुनः राजभवन में पहुंचे। वहाँ पहुँच कर उन्होंने सिंहासन पर बैठी हुई राजकुमारी को देखा। वह ताम्रवर्ण के वस्त्र पहने हुए थी और उसके कंचुक, मुकुट और आभूषण रजतमण्डित थे। राजा को देखते

ही उसके नेत्र चमक उठे। वह उसकी सुन्दरता के जादू से मुग्ध होकर चुपचाप आसन पर बैठ गया। तदनन्तर रसकोश आगे बढ़कर राजकुमारी के सामने खड़ा हो गया। उसने पुनः कहना प्रारंभ किया—

"भद्रे! एक समय एक छोटा और सुन्दर भ्रमर था। वह अपने घर पर ही बड़ा हुआ था और उसके माता-पिता ही उसके लिये आहार जुटाया करते थे। एक बार वह अपने जीवन में पहले-पहल पुष्पों से मधु संग्रह करने के लिये घर से बाहर निकला। वन में एक तालाब में खिले हुए कमल की सुगन्ध से आकृष्ट होकर वह उसके समीप पहुँचा। वह उसके रस को चूसना ही चाहता था कि कमल संकुचित हो गया और भ्रमर से कहने लगा—'अरे भ्रमर! तुम अपने सजातीय भ्रमरों की भांति उद्धततापूर्वक मुझे धक्का देते चले आए। तुम अनायास ही मेरा मधु लूटकर मेरा सर्वस्व हरण करना चाहते हो। देखो, तुम मेरे अमृत को बिना मूल्य मुझसे छीनने का प्रयत्न मत करो।' भ्रमर ने उसके चारों ओर मँडराकर गुंजित स्वर में कहा—'मैं तुम्हें इसके लिये क्या दूँ? तुम क्या चाहते हो? क्या तुम्हारा इस सरोवर में खिलना, झूमना और वायु को सुगन्धित करना पर्याप्त नहीं है?' इस पर कमल ने उत्तर दिया—'नहीं, अभी कुछ कमी है। अरे मूर्ख भ्रमर तुझे धिक्कार है! तू एक क्षुद्र जीव है। तू इतना भी नहीं समझ सकता कि मैं क्या चाहता हूँ। यदि तू मेरे मधु को चाहता है तो जा और इसका पता लगाकर मेरे पास आ।'

भ्रमर क्रोध से भिन्ना उठा। वह उड़कर यह पता लगाने के लिये चला गया कि कमल क्या चाहता है। उसने देखा कि एक गुबरैला एक वृक्ष के नीचे की भूमि को खोदने में व्यस्त है। यह देखकर भ्रमर ने कहा—'अरे गुबरैले! तू मुझे बतला कि कमल क्या चाहता है।' गुबरैले ने उत्तर दिया—'मुझे कमल से क्या मतलब? जाओ अपना रास्ता नापो, मुझे अवकाश नहीं है।' यह सुनकर भ्रमर उड़ गया। अब

उसने एक मकड़े को देखा। वह एक शाखा पर अपना जाला तन रहा था। भ्रमर ने उससे भी वही प्रश्न पूछा। मकड़े ने उत्तर दिया—'निस्सन्देह कमल को एक मक्खी की आवश्यकता है।' भ्रमर ने सोचा—'ऐसा तो हो ही नहीं सकता। यह तुच्छ मकड़ा अपने ही समान सब को समझता है।' इतने में उसे वायु में तैरता हुआ एक मेघ खंड दिखाई पड़ा। वह उड़कर उसके समीप गया और उससे पूछने लगा-'हे मेघ! कमल क्या चाहता है?' मेघ ने उत्तर दिया—'वह वर्षा की बूँदें चाहता है।' यह सुनकर भ्रमर उड़कर कमल के पास पहुँचा और उसे पानी देने को कहा। कमल ने कहा—'मुझे पानी तो मिलता है मेघ और तालाबों से, न कि तुमसे। तुम पुनः प्रयत्न करो।' यह सुनकर भ्रमर उड़ गया। उसने घास के ऊपर इठलाती हुई सूर्य की एक रश्मि को देखा और उससे भी वही प्रश्न पूछा कि-'कमल क्या चाहता है?' सूर्य की रश्मि ने उत्तर दिया -'उष्णता'। यह सुनकर भ्रमर एक जुगनू को लेकर पुनः कमल के समीप गया और उसे उष्णता प्रदान करने का प्रयत्न करने लगा। किन्तु कमल ने उत्तर दिया—'मुझे उष्णता सूर्य से प्राप्त होती है तुमसे नहीं।' भ्रमर फिर उड़ गया। उसने एक वृक्ष पर आँखें झपकाते हुए एक उल्लू को देखा। उसके कान में भनभना कर उसने उसे जगा दिया और कहा—'उल्लू! तू ही बतला कि कमल क्या चाहता है?' उल्लू ने उत्तर दिया—'कमल नींद चाहता है।' यह सुनकर भ्रमर उड़ गया। उसने जाकर कमल से कहा—'मैं तुम्हारे कान में गूँजकर और अपने पंखों से तुम पर हवा करके तुम्हें सुला सकता हूँ।' किन्तु कमल ने उत्तर दिया—'मुझे नींद तो रात से मिल जाती है, तुम क्या दोगे? तुम पुनः प्रयत्न करो।'

यह सुनकर भ्रमर निराश हो जोर-जोर से गुंजन करता हुआ उड़ गया। उसने कहा—'न जाने संसार में कौन सी ऐसी वस्तु है, जिसे यह कृपण और लालची कमल मुझसे चाहता है।' संयोग से उसके गुंजन को एक साधु ने सुन लिया। वह एक वन में रहता था और सभी पशु-

पक्षियों की भाषाएँ जानता था। उसने भ्रमर को पुकारकर उससे कहा—'अरे मूर्ख भ्रमर! कमल……यह चाहता है और उसने उसे कुछ बतला दिया। यह सुनकर भ्रमर आनन्दित हो गया और उड़कर कमल के पास पहुँचा। उसने कमल को उसकी मनोवांछित वस्तु दे दी। कमल विकसित हो गया। फिर उस भ्रमर ने उसके अंक में प्रविष्ट हो उसका मधु ग्रहण कर लिया।

राजकुमारी! आप ही बतलाइये कि उस भ्रमर ने कमल को क्या दिया?" इतना कहकर रसकोश मौन हो गया। रसकोश की बात सुनकर राजकुमारी ने लज्जित होकर कहा—"भ्रमर ने कमल को एक चुम्बन दिया।"

इतना कहकर राजकुमारी उठ खड़ी हुई। इस बार वह राजा की ओर बिना देखे ही बाहर चली गई और उसी के साथ चला गया राजा का हृदय भी। फिर राजा और रसकोश अपने-अपने कक्ष को लौट गए।

सोलहवाँ दिन

राजा ने आनन्द और निराशा के साथ रसकोश से पुनः कहा—"प्रिय मित्र! राजकुमारी के उत्तर देते-देते इतने दिन हो गये। अब तो मेरे लिए केवल पाँच ही दिन शेष रह गये हैं। मैं अपना सम्पूर्ण साम्राज्य देकर भी आज का-सा उत्तर नहीं पा सकता था; इसलिये मैं तुम्हें स्वेच्छापूर्वक क्षमा कर रहा हूँ। ओह! जब वह बोल रही थी, तब उसकी चंचलता ने मेरे हृदय के दो टुकड़े कर दिए थे। अब मैं इतना कहने का तो साहस कर ही सकता हूँ कि राजकुमारी मेरी ओर उदासीनता से नहीं देखती है। किन्तु, दुःख की बात यह है कि मैं वियोग के समय को काटूँ कैसे? अब तो इस चित्र का भी सम्पूर्ण गुण समाप्त हो गया है। इसकी हिमवत् शीतलता अब अग्नि

बनकर मेरी विरह-व्यथा को और भी बढ़ाने लगी है।" राजा ने बड़ी अनिश्चितता में रात्रि व्यतीत की। कभी वह चित्र की ओर देखने लगता तो कभी उसकी ओर से दृष्टि हटा लेता था। सूर्योदय होते ही वह फिर उठ पड़ा। उसने बड़ी कठिनता से रसकोश तथा वाटिका की सहायता से किसी प्रकार दिन भी व्यतीत किया। सूर्यास्त होने पर राजा और रसकोश पुनः सभा भवन में पहुँचे। वहाँ पहुँच कर उन्होंने सिंहासन पर बैठी हुई राजकुमारी को देखा। वह मोतिया रंग के वस्त्र पहने हुए थी और उसके कंचुक, मुकुट और अन्य आभूषणों में गोमेद जड़े हुए थे। राजकुमारी ने लजाते हुए राजा की ओर देखा। वह राजकुमारी की सुन्दरता से मुग्ध होकर चुपचाप आसन पर बैठ गया। रसकोश आगे बढ़कर राजकुमारी के सामने खड़ा हो गया और उसने पुनः कहना प्रारम्भ किया—

"भद्रे! एक नगर के प्राचीर के बाहर बहुत बड़ा पवित्र वट वृक्ष था। उसके कोटर में एक काला सर्प रहा करता था। वह सर्प प्रतिदिन बाहर निकल, कुंडली मारकर वृक्ष के सामने धूप में पड़ा रहता था। लोग उसे दूध और मिष्ठान्न भेंट किया करते थे।

उसी नगर में एक बहुत धनवान् जौहरी रहता था। उसके एक अपूर्व सुन्दरी कन्या थी। वह हीरे-मणियों में बड़ी रुचि रखती थी और उसके पास वे थे भी बहुत से। उसके पास एक ही मणि नहीं थी, जो उस सर्प के फण में थी। वह उसकी इतनी इच्छुक थी कि उसके सामने वह सब मणियों को तुच्छ समझती थी। अन्त में उसके लिये वह इतनी लालायित हो उठी कि उसने डोम जाति के एक व्यक्ति को किराए पर रख लिया और उससे कहा कि वह रात में जाकर सर्प को मार डाले और उसके फण से मणि को निकाल लाए। और इस उपाय से वह मणि जब उसे मिल गई तो उसने समझा कि उसका जीवन सफल हो गया। वह उस मणि को सभी मणियों से बढ़कर मानती थी और उसे निरन्तर अपने केशों में पहने रहती थी।

जब वासुकी को अपनी प्रजाओं में से एक के वध का पता चला तो वह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने अपराधी को दंड देने का निश्चय कर लिया। वह मानवरूप धारण करके उसी नगर में गया और वहाँ बहुत समय तक छानबीन करता रहा। अन्ततोगत्वा उसे पता चला कि सर्पमणि किसी जौहरी की कन्या के पास है। यह सुनकर सर्पराज ने एक युवक और सुन्दर जौहरी का रूप धारण कर लिया और जौहरी के मकान के निकट ही एक मकान किराये पर ले लिया। उसने यह प्रसिद्ध कर दिया कि वह व्यापार करने के लिए यात्रा पर निकला है। वह बड़े ठाटबाट से रहता था और जिनसे भी मिलता था, उन्हें खूब दावतें देता था। जौहरी से परिचय प्राप्त करके उसने उसे अपनी सम्पत्ति और सजावट से मुग्ध कर लिया और उसे बहुत सी अप्राप्य और बहुमूल्य मणियाँ प्रदान कीं। अन्त में उसने जौहरी से उसकी कन्या के साथ विवाह करने की प्रार्थना की। जौहरी ने प्रसन्नता पूर्वक अपनी अनुमति दे दी। क्योंकि उसने सोचा कि सम्पूर्ण संसार में उसे वैसा जामाता तो मिल नहीं सकता। जब जौहरी ने अपनी कन्या के सामने सर्पराज का प्रस्ताव रखा, तब वह फूली नहीं समायी। क्योंकि उसने उस युवक व्यापारी को झरोखे से देख लिया था। उसने उसकी सम्पत्ति और सजावट के विषय में भी सुन रखा था। उसने सोचा कि अब तो पति के रूप में उसे मणियों की खान ही मिलने वाली है।

एक शुभ दिन निश्चित हुआ। विवाह की तैयारियाँ होने लगीं। सर्पराज नित्यप्रति अपनी वधू के लिए टोकरियों में भर-भर कर मणियाँ भेजा करता था। इससे कन्या हर्ष के मारे अपनी सुध-बुध खो बैठी। अन्ततोगत्वा नियत दिन आया। वर-वधू विवाह-मंडप में गये और विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ। यथासमय वर, वधू को विवाह-पर्यङ्क पर ले गया और उसे नाम ले-लेकर अपनी ओर संबोधित करने लगा। जैसे ही वधू सर्पराज की ओर मुड़ी, वह धीरे से उसके और समीप चला गया।

उसके मुखमंडल पर मुस्कराहट खेल रही थी। वधू ने देखा कि वर के मुख में एक जिह्वा है जो कभी मुख से बाहर आ जाती है, कभी मुख के अन्दर चली जाती है। वह लम्बी, पतली, बीच से कटी हुई और सर्प की जिह्वा की भाँति लपलपा रही है।

प्रातः काल होते ही गायकों ने वर-वधू को जगाने के लिये प्रभाती गाना आरम्भ कर दिया। दिन बीतता गया, किन्तु वे लोग बाहर न आये। बहुत समय तक प्रतीक्षा करने के उपरान्त कन्या के पिता जौहरी और उसके मित्रों को आशंका होने लगी। उन्होंने जाकर भीतर से बन्द दरवाजे को तोड़ दिया। वहाँ पर उन्होंने देखा कि पलंग पर कन्या अकेली ही मरी हुई पड़ी है और उसके वक्षस्थल पर दो छोटे-छोटे चिन्ह बने हुए हैं। उन्हें कहीं भी कन्या का वर दिखलाई नहीं दिया। उन्होंने बिस्तर से रेंग कर जाता हुआ एक काला सर्प देखा, जो एक दीवार के बिल में छिप गया।

राजकुमारी! आप ही बतलाइये कि उस सर्प की मणि में ऐसी क्या विशेषता थी कि जौहरी की कन्या उसे पाने के लिये इतनी लालायित थी?" इतना कहकर रसकोश मौन हो गया। यह सुनकर राजकुमारी बोली—"आकर्षण न तो सर्प की मणि में था, न तो उसके जादू में। आकर्षण केवल इसी बात में था कि कन्या उसे प्राप्त नहीं कर सकी थी। यह तो स्त्रियों का स्वभाव ही है कि जो वस्तु उनके पास होती है, उसे वे तुच्छ समझती हैं और जो वस्तु उनके पास नहीं होती है, उसके लिये वे आहें भरती रहती हैं।"

इतना कहकर राजकुमारी उठ खड़ी हुई। उसने एक दीर्घ निःश्वास लेकर राजा की ओर देखा और बाहर चली गई। उसी के साथ चला गया राजा का हृदय भी। फिर राजा और रशकोश पुनः अपने-अपने कक्ष को लौट आये।

सत्रहवाँ दिन

इस बार राजा ने रसकोश से पुनः कहा—"प्रिय मित्र ! सारा सन्देह दूर हो गया। अब तो मेरा विनाश निश्चित है। क्योंकि राजकुमारी की बुद्धि पर विजय पाना असम्भव है। यदि मैं कामान्ध नहीं हो गया हूँ तो उसके निःश्वास ने उसके शब्दों का संकेत दे दिया है। ओह, उसके हाथ से निकल जाने के भय से मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया हूँ। अब तो मैं तुम्हें उसी प्रकार मार डालूँगा, जिस प्रकार एक उन्मत्त हाथी अपने मित्र महावत को बड़ी-बड़ी यातनाएँ देकर उसका वध कर डालता है। मेरा दुर्भाग्य तो मृत्यु से भी बढ़कर है, क्योंकि सामने भोजन रहते हुए भी मैं भूख से तरस-तरस कर मरूँगा। धिक्कार है इस चित्र को, जो मुझे विनाश की ओर ले आया है। धिक्कार है उस चित्रकार को, जिसने इस चित्र को बनाया है। अब तो मुझे स्पष्ट रूप से राजकुमारी और उसके इस चित्र में अन्तर दिखलायी पड़ने लगा है। वह है तो दयालु, किन्तु अपनी बुद्धि के रूप में विधाता के द्वारा ही प्रेरित होकर वह इस प्रकार मुझे निराश कर रही है।" वह रात राजा ने बड़ी बेचैनी से व्यतीत की। उसने बड़े प्रयास से चित्र की ओर से अपनी दृष्टि को हटाए रखा। सूर्योदय होते ही वह उठ पड़ा और उसने वाटिका में घूम-घूम कर रसकोश की सहायता से अत्यन्त कठिनाई से दिन काटा। सूर्यास्त होने पर राजा और रसकोश पुनः सभाभवन में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने सिंहासन पर बैठी हुई राजकुमारी को देखा। वह कपिश वर्ण के वस्त्र पहिने हुए थी और उसके कंचुक, मुकुट एवं अन्य आभूषणों में तृण मणियाँ जड़ी हुई थीं। राजकुमारी ने राजा की ओर देखा। रात भर सो न सकने के कारण उसके नेत्र रक्तवर्ण के हो रहे थे। राजकुमारी को देखकर वह उसकी सुन्दरता के जादू के वशीभूत हो गया और अवाक् होकर आसन पर बैठ गया। रसकोश बढ़कर राजकुमारी के आगे खड़ा हो गया और उसने पुनः कहना प्रारम्भ किया—

"भद्रे ! एक समय एक ऐसा राजा था, जो अपने क्षात्र-धर्म का उपहास किया करता था। उसका समय दुष्कर्मों में ही व्यतीत होता था। वह शय्या पर पड़ा रहता, ब्राह्मणों की उपेक्षा करता, मदिरापान करता, मृगया में लगा रहता और सुन्दरियों के साथ समय नष्ट किया करता था। जो भी व्यक्ति उसका विरोध करने का साहस करता, उसे वह सीधे साम्राज्य से निकाल दिया करता था। जैसे-जैसे समय बीतता गया, वैसे-वैसे वह और भी बुराइयों की ओर बढ़ता गया। क्योंकि दिन-पर-दिन वह असन्तोष और अतृप्ति से अभिभूत रहने लगा। इन सब बुराइयों से छुटकारा पाने के लिए वह निन्दनीय पानोत्सव में ही रमा रहने लगा।

एक दिन की बात है कि वह मृगया के लिये गया हुआ था। पशुओं का पीछा करते-करते वह अपने महल से बहुत दूर वन में चला गया। सूर्यास्त होने पर वह सघन वन में जाकर पथभ्रष्ट हो गया। रात्रि कहाँ व्यतीत करे, यह विचार करते-करते वह एक वृद्ध संन्यासी की कुटी में जा पहुँचा। वहाँ अपने अनुचरों को विदा करके वह रात भर आतिथ्य-सत्कार में कुशल, साधु के साथ रहा। रात में कन्दमूल खाकर वह कुश और पत्तों की शय्या पर सो रहा।

नींद आ जाने पर उसने एक स्वप्न देखा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह एक बड़ी नदी के तट पर है। वह निविड़ अन्धकार को चीर कर बाहर आ गया है। और अब वह जहाँ खड़ा हुआ है, वहाँ सूर्य चमक रहा है। फिर वह एक वृत्त के चारों ओर दौड़ने लगा। उसके हाथ में एक बीज था। उसने एक गड्ढा खोदकर बीज को उसमें आरोपित कर दिया और उसे नदी के जल से सींचने लगा। धीरे-धीरे वह अंकुरित होकर एक विशाल वृक्ष के रूप में परिणत हो गया। वृक्ष में पत्तियाँ और मंजरियाँ लगीं और फिर एक फल भी लगा। फल बढ़ता ही रहा। और बढ़कर एक कूष्मांड के समान हो गया। पहले वह मरकत

मणि की तरह हरा था, बाद में वह पद्मराग मणि की तरह लाल हो गया। वह धूप में चमकता था। अपने भार के कारण वह फल इतना नीचे लटक आया कि अब वह उसे अपने हाथ से पा सकता था। उसने अपना हाथ बढ़ाकर फल तोड़ा और उसे खा लिया।

इतने में राजा को अन्धकार के बाहर फैला हुआ एक बहुत बड़ा हाथ दिखलाई पड़ा। उस हाथ ने उसे पकड़कर एक ओर हटा दिया और पतले धागे से उसे एक खड्ड में लटका दिया। जब उसकी दृष्टि नीचे की ओर गई तो उसे अथाह गहराई दिखलाई पड़ी और ऊपर देखने पर उसे एक गिद्ध दिखलाई पड़ा, जो अपनी चोंच से धागे को काट रहा था। हिमवत् शीतलता ने उसके हृदय को जमा दिया और जलती हुई अग्नि ने उसकी परेशानियों को बढ़ा दिया और वह सघन अन्धकार में छिप गया। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा कि वर्णनातीत दुःख से भरा हुआ एक-एक क्षण युगों की भाँति व्यतीत हो रहा है। यह स्वप्न देखते ही वह जाग गया और चिल्ला उठा। कुटिया की छत से छन-छन कर आने वाली चन्द्रिका में उसे वहाँ संन्यासी खड़ा हुआ दिखाई पड़ा। वह ध्यानमग्न हो मन्त्रोच्चारण कर रहा था।

तदुपरान्त वह फिर शय्या पर जाकर सो गया। उसने फिर वही स्वप्न देखा और उसे यह अनुभव हुआ कि उसने एक बीज लगाया है, जिसे वह नदी के जल से सींच रहा है। फिर वह बीज बढ़कर वृक्ष हुआ। उसमें पत्तियाँ और फूल आये और एक फल भी लगा। वह फल भी पहले की भाँति बढ़कर पहले हरा हुआ, फिर लाल, और फिर लटक कर उसके हाथ में आ गया। वह फिर फल को तोड़ कर खा गया। इससे उसकी अन्तरात्मा में अकथनीय आनन्द का उद्रेक हुआ। वह गहरी नींद में डूब गया और मृतवत् पड़ा रहा। प्रातःकाल जब सूर्य की रश्मियाँ झरोखों से होकर कुटी में आने लगीं, तब साधु ने उसे जगाया।

राजा अपने घर लौट गया और उसने अपना पुराना ढंग और रहन-सहन बदल दिया।

राजकुमारी ! आप ही बतलाइये कि राजा ने ऐसा क्यों किया ?" इतना कहकर रसकोश मौन हो गया। राजकुमारी ने उत्तर दिया—"राजा भयभीत हो गया था। वह वृक्ष उसके ही कुकर्मों का वृक्ष था। उसका फल खाना उसके अपने ही कुकर्मों का फल-भोग था। स्वप्न में उसे जिस यातना को सहन करना पड़ा था, वह तो उसके कुकर्मों के दंड की एक धुँधली सी छाया मात्र थी। यदि उसके रहने का ढंग कुछ और ही होता और वह कुकर्मों के स्थान पर सत्कर्मों का संचय करता तो उसे मोक्ष का आनन्द प्राप्त हो सकता था। दुबारा सोने पर वह जिस गहरी निद्रा में सोया था और जिसने उसकी वैयक्तिकता को दूर कर दिया था, वह उसी मोक्ष का प्रतीक थी।"

इतना कह चुकने के बाद राजकुमारी चुप हो गई और अश्रुपूर्ण नेत्रों से राजा की ओर देखती हुई उठकर चली गई और उसी के साथ चला गया राजा का हृदय भी। फिर राजा और रसकोश अपने-अपने कक्ष को वापस लौट आए।

अठारहवाँ दिन

राजा ने रसकोश से कहा—'प्रिय मित्र ! यह बिल्कुल सत्य है कि मैं अपने पूर्वजन्म के कर्मों का फल भोग रहा हूँ। अब तो केवल चार ही दिन शेष रह गए हैं। तुमने ठीक ही कहा था। मैं भी तो एक अथाह खड्ड में उलटा लटका हुआ हूँ, और मेरा भी हृदय हिम के समान जड़ हो गया है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि राजकुमारी सभी परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो जायगी। तुम्हारे प्रश्नरूपी बाण लौटकर तुम्हारे ऊपर ही आ पड़ते हैं, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि राजकुमारी ने जड़ाऊ कंचुक नहीं, बल्कि कवच धारण कर

रखा है। इस चित्र का अमृत हलाहल बन गया है, और अब वह मुझे प्रातःकाल होने के पूर्व ही नष्ट कर देगा।"

वह रात भी राजा ने बड़ी निराशा में व्यतीत की। रात भर वह चित्र की ओर अपनी पीठ ही किये रहा। फिर सूर्योदय होते ही वह उठ पड़ा और उसने बड़ी कठिनता से रसकोश और वाटिका की सहायता से दिन बिताने का प्रयत्न किया। सूर्यास्त होने पर राजा और रसकोश पुनः सभाभवन में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने सिंहासन पर बैठी हुई राजकुमारी को देखा। वह लोहित वर्ण के वस्त्र पहने हुए थी और उसके कंचुक, मुकुट एवं अन्य आभूषणों में मोती पिरोए हुए थे। जैसे ही राजकुमारी ने राजा की ओर देखा, उसने एक पुष्प की भाँति अपने मस्तक को झुका लिया। राजा भी उसकी सुन्दरता के जादू से मुग्ध हो गया। रसकोश बढ़कर आगे आया और राजकुमारी के सामने खड़ा हो गया। उसने पुनः कहना प्रारम्भ किया—

"भद्रे! एक प्रेमी अपनी प्रियतमा की मृत्यु पर विलाप कर रहा था। वह सहसा चिल्ला उठा—'अरी मृत्यु! तू बड़ी बलवती है, किन्तु हे कामदेव, तू उससे भी अधिक शक्ति सम्पन्न हो।' संयोग से यमराज उसकी यह बात सुन रहे थे। उन्होंने कामदेव से कहा—'जरा सुनिए तो! यह मूर्ख कैसी अनर्गल बातें बक रहा है।' किन्तु कामदेव ने उत्तर दिया—'यह मूर्खता नहीं, सत्य है। मैं अधिक बलवान् हूँ।' तब, दोनों में कौन अधिक बलवान् है, इस बात को लेकर यम और कामदेव में विवाद छिड़ गया। कुछ समय पश्चात् कामदेव ने कहा—'इन बातों से लाभ ही क्या है? हम लोग अपने-अपने बल का प्रयोग कर इसकी परीक्षा ही न कर लें?' यम ने कहा—'एवमस्तु!' उन्होंने अपने प्रयोग के लिये तीन वस्तुओं को चुना—एक वीर, एक न्यग्रोध वृक्ष और एक साधु का हृदय।

सर्वप्रथम यमराज न्यग्रोध वृक्ष के समीप गए। वहाँ जाकर उन्होंने उसकी जड़ों को नष्ट कर दिया। किन्तु जितनी शीघ्रता से

जड़ें नष्ट होती जाती थीं उतनी ही शीघ्रता से कामोद्दीप्त शाखाएँ ऊपर से अन्य जड़ें नीचे की ओर फेंकती जाती थीं। भूमि में प्रविष्ट होकर वे जड़ें नए-नए तनों के रूप में परिणत हो जाती थीं। वे तने बढ़ते जाते थे और उनसे नई-नई शाखाएँ निकलती जाती थीं। यह क्रम बराबर चलता ही रहा। कुछ समय पश्चात् यमराज थककर रुक गए। वहाँ पहले जैसा ही विशालकाय दूसरा वृक्ष खड़ा हो गया।

अब कामदेव ने यमराज से कहा—'देखिए, विजय मेरी हुई है।' किन्तु यमराज ने कहा—'अभी क्या है, देखते रहिए।' इतना कहकर यमराज योद्धा के पास पहुँचे। वह समरांगण में आगे-आगे लड़ ही रहा था कि यमराज ने उस पर प्रहार कर दिया, जिससे वह मर गया। कामदेव ने योद्धा के देशवासियों को उकसा दिया। उन्होंने योद्धा की मृत्यु पर अत्यन्त शोक प्रकट किया और उसकी स्मृति में एक स्तम्भ बनवा दिया। कवियों ने उसका यशोगान किया, माताओं ने उसी के नाम पर अपने पुत्रों का नामकरण किया और जनता ने मन्दिरों में उसी की मूर्त्ति का पूजन करना आरम्भ कर दिया।

कामदेव ने यमराज से कहा—'देखिये, मैं पुनः विजयी हो गया हूँ। अब तो आपको यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि मैं अधिक बलवान् हूँ।' किन्तु यमराज ने कहा—'अभी क्या है, देखते रहिये।' इतना कहकर यमराज साधु के समीप गये। वह वन में कठोर तपस्या कर रहा था। यमराज ने उसके हृदय पर प्रहार करके उसे मार डाला। परन्तु उसके मरते ही उसमें नवीन कामना उत्पन्न हो गयी। उसमें विषयों के प्रति नूतन आकर्षण उत्पन्न हो गया। इस प्रकार उसके हृदय में बराबर संघर्ष चलता रहा। कभी वह मर जाता था, तो कभी पुनः जीवित हो उठता था और फिर सांसारिक आनन्दों का अनुभव करने लगता था।

तब कामदेव ने कहा—'देखिये, इस बार मैं पुनः आपसे अधिक बलवान् सिद्ध हो गया। विजय मेरी हुई है। अब तो आपको अपनी हार मान लेनी चाहिये।' किन्तु यमराज ने कहा—'अधिक बलवान् तो मैं ही हूँ। वह प्रेमी तो वाचाल था।' इस पर कामदेव ने यमराज की खूब खिल्ली उड़ाई।

राजकुमारी! अब आप ही बतलाइये कि दोनों में अधिक बलवान् कौन है ?" इतना कहकर रसकोश मौन हो गया। यह सुनकर राजकुमारी बिल्कुल पीली पड़ गयी। उसने धीमे स्वर में कहा—"कामदेव बड़ा ही धूर्त है। एक बेइमान जुआड़ी की भाँति दूसरे को जीतने के लिये सदैव पासा लेकर तैयार रहता है। वह कभी-कभी विशेष क्षणों में, और परिमित समय में ही, अधिक बलवान् प्रतीत होता है। इसीलिये उसने यमराज को चेतावनी दी थी, क्योंकि वह यह भली भाँति जानता था कि सभी क्षण देश और काल की सीमा में बँधे रहते हैं। फिर भी यमराज कामदेव की अपेक्षा अधिक बलवान् हैं। वे असीम हैं, क्योंकि वही आदि और अन्त से रहित काल हैं। उनकी शक्ति को बाँधा नहीं जा सकता। अतएव कुछ विशेष क्षणों में उनकी शक्ति को उसी प्रकार सीमित नहीं किया जा सकता, जिस प्रकार गंगा के अनवरत प्रवाह को एक घड़े में बन्द नहीं किया जा सकता।"

इतना कह चुकने के बाद वह उठ खड़ी हुई और दुःखपूर्ण नेत्रों से राजा की ओर देखती हुई बाहर चली गयी और उसी के साथ चला गया राजा का हृदय भी। फिर राजा और रसकोश अपने-अपने कक्ष को लौट आये।

उन्नीसवाँ दिन

राजा ने रसकोश से पुनः कहा—"प्रिय मित्र! अब मैं अपने सुख को तिलाञ्जलि दे रहा हूँ। अब मेरे अन्त का श्रीगणेश हो गया है।

अब तो केवल तीन ही दिन शेष रह गये हैं। वे भी पहले की भाँति समाप्त हो जायेंगे और मैं असफल-मनोरथ ही रह जाऊँगा। तब मेरा सूर्य सदैव के लिए अस्त हो जायगा। बड़े दुःख की बात है कि जिस समय राजकुमारी एक भयभीत मृगशावक की भांति मेरी ओर देख रही थी, उस समय उसके दुखःपूर्ण नेत्रों में मुझे अपना दुर्भाग्य दिखाई पड़ रहा था। अरे, या तो वह कम सुन्दरी होती या कम बुद्धिमती ही। क्योंकि इन्हीं दोनों गुणों के संयोग में मेरा विनाश निहित है। दूर करो इस चित्र को, जो ज्वाला की भाँति मेरे हृदय को दग्ध कर रहा है।"

वह रात भी राजा ने चित्र की ओर ध्यान दिये बिना, द्विविधा में ही व्यतीत कर दी। सूर्योदय होते-होते वह फिर उठ पड़ा। उसने रसकोश के साथ अर्धमृत दशा में दिन व्यतीत किया। सूर्यास्त होने पर राजा और रसकोश फिर दरबार में जा पहुँचे। वहाँ पहुँच कर उन्होंने सिंहासन पर बैठी हुई राजकुमारी को देखा। वह सुनहले वस्त्र पहने हुये थी और उसके कंचुक, मुकुट एवं अन्य आभूषणों में वैदूर्य मणियाँ पिरोई हुई थीं। जब उसने राजा की ओर देखा तो उसके नेत्रों में हर्ष और शोक एक दूसरे से प्रतिद्वन्दिता करते हुये प्रतीत हो रहे थे। राजा उसकी सुन्दरता से मन्त्रमुग्ध होकर अवाक् हो आसन पर बैठ गया। रसकोश आगे बढ़कर राजकुमारी के सामने खड़ा हो गया और उसने पुनः कहना प्रारम्भ किया—

"भद्रे! एक समय में एक ब्राह्मण था, जिसका नाम था कृताकृत। वह वेदाध्ययन में प्रमाद करता था। वह अपने धर्म को छोड़कर कुमार्गगामी हो गया। उसके साथी जुआड़ी, दुश्चरित्र और जाति से बहिष्कृत व्यक्ति थे। वह रात्रि के समय श्मशान भूमि में जाता और भूत, बैताल और मृतात्माओं से साक्षात्कार किया करता था। वह सदैव अशुद्ध और अपवित्र क्रियाओं तथा अभिचार कर्म में लगा रहता था। एक रात को जब कि चितायें जल रही थीं और जलते हुये शवों से दुर्गन्ध निकल रही थी, ब्राह्मण के परिचित एक बैताल ने उससे

कहा—'मुझे भूख लगी है, मेरे भक्षण करने के लिए ताजा मांस लाओ, अन्यथा मैं तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा।' इस पर कृताकृत ने उत्तर दिया—'मैं मांस लाऊँगा तो अवश्य, किन्तु ऐसे नहीं। आप मुझे उसके लिये देंगे क्या?' वैताल ने उत्तर दिया—'मुझे एक अभी-अभी मारा हुआ ब्राह्मण लाकर दो, मैं तुम्हें मुर्दे को उठाकर खड़ा कर देने वाला मन्त्र सिखा दूँगा।' किन्तु कृताकृत ने कहा—'केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है।' वे श्मशान में इसी प्रकार मांस के मूल्य के संबंध में भाव-ताव करते रहे। अन्त में पथ-भ्रष्ट ब्राह्मण ने कहा—'मुझे पासों का एक ऐसा जोड़ा दो, जिससे जुए में मैं ही सदैव विजयी होता रहूँ। तब मैं तुम्हारी आवश्यकता के लिये मांस लाकर दूँगा।' वैताल ने कहा—'एवमस्तु!' तदुपरान्त कृताकृत चला गया। जब उसे कोई दूसरा उपाय नहीं सूझा तो उसने अपने ही भाई का वध कर डाला और अर्धरात्रि में उसे लेकर श्मशान में पहुँचा। वैताल ने भी अपना वचन पूरा किया। उसने ब्राह्मण को पासा भी दिया और उसे वह मन्त्र भी सिखा दिया।

कुछ समय पश्चात् कृताकृत ने अपने मन में सोचा—'वैताल ने मुझे जो मन्त्र सिखाया है, मैं उसकी उपयोगिता की परीक्षा तो करूँ।' यह सोचकर वह कहीं से एक चाण्डाल का शव ले आया। आधी रात के समय उसने शव को ले जाकर श्मशान में रक्खा और मन्त्रोच्चारण करना प्रारम्भ कर दिया। आधी क्रिया समाप्त करने के बाद ब्राह्मण ने शव की ओर देखा। उसे शव की बायीं भुजा, बाँया पैर और बायाँ नेत्र अनुप्राणित होकर तीव्रता से स्पन्दन करता हुआ दिखाई पड़ा। किन्तु शव का परार्द्ध अभी मृत ही था। उस दृश्य को देखकर ब्राह्मण अत्यन्त भयभीत हो गया। उसे शेष मन्त्र भूल गया और वह उछल कर वहाँ से भाग खड़ा हुआ। उसके साथ ही शव भी उछल पड़ा। उसके आधे मृत भाग में एक वैताल ने प्रवेश किया। वह शव बड़े वेग से ब्राह्मण के पीछे-पीछे दौड़ चला।

वह एक ही पैर से चलता था, एक आँख को नचाता रहता था और अस्पष्ट रूप से चिल्लाता जाता था—'कुछ ही हुआ, बहुत-कुछ हुआ, कुछ भी नहीं हुआ।' कृताकृत पूरे वेग से अपने घर की ओर भागा और घर पहुँच कर वह बिस्तर पर पड़ गया। उसका अङ्ग-प्रत्यङ्ग काँप रहा था। कुछ समय के पश्चात् वह सो गया। सहसा वह एक कोलाहल सुनकर उठ बैठा। उसने देखा कि दरवाजा खुला हुआ है और चांडाल का शव अन्दर चला आया है। वह अपने बायें पैर से लँगड़ाता हुआ उसकी ओर वेग से बढ़ता जा रहा था। उसका बाँया नेत्र नाच रहा था और आधा मृत भाग एक ओर लटक रहा था। वह विकराल रूप से चिल्लाता जाता था—'कुछ ही हुआ, बहुत कुछ हुआ, कुछ भी नहीं हुआ।' यह सुनकर कृताकृत बिस्तर से कूदकर बाहर निकला और एक घोड़े पर सवार होकर बड़े वेग से एक सुदूर नगर को भाग गया।

वहाँ जाकर उसने सोचा कि अब यहाँ मैं सुरक्षित हूँ। वह नित्यप्रति द्यूत-कक्ष में जाने लगा और वहाँ अपने पासे की सहायता से उसने बहुत-सा धन सञ्चय कर लिया। अब वह खूब दावतें खाता और खिलाता हुआ बड़ी मौज से रहने लगा। एक रात वह अन्य जुआड़ियों के साथ द्यूत-कक्ष में बैठा हुआ था। वह पासा फेंक ही रहा था कि उसे लँगड़ाने का शब्द सुनाई पड़ा। उसने अपने चारों ओर देखा, तब उसे उसी मृत चाण्डाल का शव एक पैर से बड़े वेग से आता हुआ दिखाई पड़ा। उसका सड़ा हुआ अर्धाङ्ग लटक रहा था और उसकी बायीं आँख क्रोध से नाच रही थी। वह बार-बार गरजता हुआ कह रहा था—'कुछ ही हुआ, बहुत-कुछ हुआ, कुछ भी नहीं हुआ।' शव को देखकर ब्राह्मण चिल्ला पड़ा। वह चौकी पर उछल पड़ा और एक दूसरे द्वार से भागकर नगर से बाहर चला गया। वह बड़ी तेजी से वन में होकर भागता जा रहा था और निरन्तर पीछे की ओर देखता जाता था। इस प्रकार कई रातें और कई दिन बीत गये, किन्तु

ब्राह्मण इतना भी साहस नहीं कर सका कि वह श्वास लेने के लिये भी कहीं रुके। इस प्रकार वह एक सुदूर नगर में पहुंच गया। वहाँ वह वेष बदल कर छिपकर इस प्रकार रहने लगा, जैसे वह किसी गुफा में रह रहा हो। उस द्यूत-कक्ष में बैठे हुये सभी अन्य जुआड़ी भयभीत होकर मर गये।

कुछ समय के पश्चात् उस नगर में उसने पुनः जुए से बहुत सा धन संचित कर लिया। अब वह सुविधापूर्वक खूब खर्च करता हुआ जीवन व्यतीत करने लगा। एक रात को वह अपनी प्यारी वेश्या के साथ उसके घर के अन्दर एक कक्ष में बैठा हुआ था। इतने में उसे कुछ खड़बड़ाहट सुन पड़ी। इस पर उसने इधर-उधर देखा और पाया कि उसी चाण्डाल का शव उसकी ओर तेजी के साथ लँगड़ाता हुआ पुनः चला आ रहा है। वह एक पैर से चल रहा था। उसका अर्धाङ्ग नीचे की ओर लटक रहा था। उसके सड़ जाने से अस्थियाँ माँस से अलग हो गयी थीं। उसका बायाँ नेत्र क्रोध की ज्वाला से चमक रहा था और वह रावण की भाँति चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा था—'कुछ ही हुआ, बहुत कुछ हुआ, कुछ भी नहीं हुआ।' शव को देखकर वेश्या भयभीत हो उठी और उसने तत्काल अपना शरीर छोड़ दिया। कृताकृत छज्जे की ओर खुलने वाले एक द्वार से बाहर निकलगया। चाण्डाल ने भी बड़ी तेजी से उसका पीछा किया। जब कृताकृत को कोई दूसरा मार्ग नहीं दिखाई दिया तब वह एक गली में कूद पड़ा। इससे उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो गये और वह मर गया।

राजकुमारी! अब आप ही बतलाइये कि शब के शब्दों का अभिप्राय क्या था?" इतना कह कर रसकोश मौन हो गया। राजकुमारी ने उत्तर दिया—"यह तो बिल्कुल सरल ही बात है। धिक्कार है उन दुर्बल आत्माओं को, जिनमें इतनी भी शक्ति नहीं

होती कि वह जो कुछ कार्य करना चाहें उसका निर्वाह कर सकें। वे उसके लिये या तो बहुत थोड़ा प्रयत्न करते हैं या बहुत अधिक, और इस प्रकार अपने विनाश का कारण बन जाते हैं। गुणीजन सदैव पाप से बचते रहते हैं, किन्तु दुष्ट जन अपने कुकृत्यों का परिणाम भोगते हैं। एक स्वर्ग को प्राप्त करते हैं और इहलौकिक सुखों को भी। किन्तु कायरों का आत्मा इतना दुर्बल होता है कि वे न तो भलाई ही कर सकते हैं न बुराई ही। वे अपनी दुर्बलता के कारण सदैव पाप से डरते ही रहते हैं और दोनों लोकों से हाथ धो बैठते हैं।"

इतना कहकर राजकुमारी उठ खड़ी हुई। वह राजा की ओर देखती हुई भी उन्हें नहीं देख रही थी। कुछ क्षणों के उपरान्त वह बाहर चली गयी और उसी के साथ चला गया राजा का हृदय भी। फिर राजा और रसकोश अपने-अपने कक्ष को लौट आये।

बीसवाँ दिन

राजा ने रसकोश से कहा—"प्रिय मित्र! मुझे उस अद्वितीय स्त्री की सुन्दरता ने काले सर्प की भाँति डँस लिया है। अब उसका विष मेरे ऊपर चढ़ने लगा है और मुझे अब दो ही दिन और जीवित रहना है। यह निश्चित है कि तुम्हारे अन्तिम प्रश्नका जो भी उत्तर राजकुमारी देगी, वह मेरे लिये मृत्यु-दण्ड होगा, और यह भी निश्चित है कि वह उत्तर देगी अवश्य ही। उसकी बुद्धि तीक्ष्ण कृपाण की धारा के समान है। वह समस्या की गुत्थी को तो काटती ही है, साथ ही मेरे हृदय को भी बींधती जाती है।" राजा ने निराशा में वह रात्रि भी व्यतीत कर दी। उसने रात भर शय्या का स्पर्श भी नहीं किया। सूर्योदय होने के साथ वह फिर उठ पड़ा। वह अकेला ही वाटिका में गया और वहाँ घूमता रहा। वह एक ओर तो सूर्यास्त की कल्पना से भयभीत था, किन्तु दूसरी ओर अपनी प्रियतमा से पुनर्मिलन के लिये लालायित भी। इन दो विरुद्ध भावनाओं से उसका हृदय दो

ट्रक हो गया। उसने विनायक को उपालम्भ देना प्रारम्भ किया और कहा—"हे सिंदूर मण्डित शुण्ड से युक्त विनायक ! आपने मुझे धोखा दिया है। आपने मेरी सफलता के मार्ग को निर्विघ्न न करके उसमें अनेक दुर्वार्य बाधाएँ डाल दी हैं, और वे बाधाएँ हैं राजकुमारी की तीक्ष्ण बुद्धि के रूप में।" तदन्तर उसने कहा—"यह समय निराश होने का नहीं है। मुझे कृताकृत की भाँति अपने कार्य को अधूरा नहीं छोड़ना है। मैं एक ऐसी पहेली खोज निकालूँगा, जिसका उत्तर ही वह न दे सकेगी। किन्तु इसकी भी क्या आशा कि जिस कार्य में रसकोश को सफलता नहीं मिल सकी, उसमें मुझे सफलता मिल ही जायगी ? राजकुमारी रसकोश के प्रश्नों का उत्तर देने में जितनी कुशल नहीं है, उससे अधिक कुशल रसकोश प्रश्नों को बनाने में है। वह तो मनुष्य रूप में कथाओं का सागर है। इस सुन्दरी की बुद्धि का अनुमान मनुष्य नहीं, कोई देवता ही लगा सकता है।" तत्पश्चात् वह सरस्वती की प्रार्थना करने लगा। उसने कहा—"आदि वाग्देवि ! अब तो आपकी कृपा ही मेरा एक मात्र अवलम्ब है। देवि ! मुझपर कृपा कीजिये। या तो मेरी प्रियतमा को अस्थायी अज्ञान से आच्छादित कर दीजिये या फिर मुझे ही कोई ऐसी पहेली सुना दीजिये, जिसका वह उत्तर न दे सके। भले ही उसकी पहेली की अपेक्षा मेरी पहेली निकृष्टतर ही क्यों न हो।"

उसी क्षण सरस्वती ने राजा के मन में एक विचार उत्पन्न किया। वह प्रसन्नता से उछल पड़ा और चिल्ला कर कहने लगा—"अरे, मुझ पर देवी की कृपा हो गयी है। जय हो माता सरस्वती की। अब तो राजकुमारी मेरी होकर ही रहेगी।" वह तुरन्त ही रसकोश का पता लगाने के लिये निकल पड़ा। उसने देखा कि रसकोश आगामी सन्ध्या के लिये कहानी सोचने में ध्यान मग्न है। तब उसने उससे कहा—"प्रिय मित्र ! ध्यान भङ्ग करो। मेरा उद्देश्य सफल हो गया है। आज सन्ध्या को राजकुमारी के सामने मैं स्वयं ही एक पहेली प्रस्तुत

करूँगा।" इस पर रसकोश ने कहा—"महाराज, बधाई है। किन्तु ऐसे महत्वपूर्ण विषयों में हमें अनुमानित विश्वास से अपने आपको विपत्ति में नहीं डालना चाहिये। पहले आप अपनी पहेली मेरे सामने रखिये। जिससे हम लोग उसकी जटिलता की परीक्षा कर लें।" यह सुनकर राजा सूर्यकान्त हर्षोल्लास से हँस पड़ा। उसने कहा—"तुम्हारा सन्देह ही सूचित करता है कि यह पहेली ऐसी है, जिसका उत्तर नहीं हो सकता। मैं स्वयं एक समस्या हूँ। मैं राजकुमारी के पास जाकर उससे पूछूँगा कि मुझे क्या करना चाहिये। यदि उसने मुझे कुछ बतलाया तो मैं उससे कल वही पूछूँगा, जो वह मुझे आज बतलायेगी। और यदि वह मुझे कुछ न बतलावेगी तो आज शर्त के अनुसार उसे मेरी बनना ही पड़ेगा। अब तो दोनों तरह से पक्षी पिंजड़े में है।"

यह सुनकर रसकोश ने मुस्करा कर कहा—"महाराज की जय हो! निश्चय ही प्रेम की शक्ति बड़ी अपूर्व है। वह एक पत्थर की भाँति शीघ्र ही बुद्धि की धारा को कुण्ठित या तीक्ष्ण कर देता है। पहले तो उसने आपको सभी सांसारिक वस्तुओं की ओर से अन्धा कर दिया था और अब उसने आपकी दृष्टि को इतनी पैनी कर दिया है कि आप उस वस्तु को भी देखने लगे हैं, जो अभी तक हम लोगों की दृष्टि से बचती रही। यद्यपि वह बराबर हमारे सामने ही पड़ी थी। यदि मैं राजकुमारी के बाह्य लक्षणों से धोखा नहीं खा रहा हूँ तो यह मेरी भविष्यवाणी है कि कामदेव उसे भी अन्धा कर देगा, और वह स्वयं बन्धन में पड़ जायगी। जो स्वयं बन्धन में पड़ना चाहते हैं, उनसे अधिक सरलता से और कोई पकड़ा ही नहीं जा सकता। यह ठीक है कि राजकुमारी मेरे प्रश्नों के सामने पुष्पवत कोमल हो जायेगी।"

अपनी अधीरता के कारण राजा शेष दिन बड़ी कठिनता से व्यतीत कर सका। वह राजकुमारी से प्रश्न करने के लिये उतावला हो रहा था। अन्ततोगत्वा सूर्यास्त हुआ। रसकोश ने कहा—"राजा, इस

बार आप अकेले ही दरबार में जाइये। आज तक मेरी उपस्थिति से आपका जितना लाभ हुआ है, आज उससे अधिक आपका लाभ मेरी अनुपस्थिति से होगा। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मित्र अपनी मित्रता का निर्वाह अपनी उपस्थिति की अपेक्षा अनुपस्थिति से कहीं अधिक अच्छी तरह कर सकता है। प्रसंगवश मैं आपको एक कहानी सुनाऊँगा; सुनिये।" किन्तु राजा ने कहा—"प्रिय मित्र! यह समय कहानियों का नहीं है, फिर चाहे वे तुम्हारी ही सुनाई हुई क्यों न हों। आज मैं तुम्हारे बिना अकेले जाऊँगा तो अवश्य; तथापि यदि सरस्वती और विघ्न विनायक की सहायता से मुझे अपने उद्देश्य में सफलता मिल गयी, तो उसका श्रेय मेरी अपेक्षा तुमको ही अधिक होगा। विरहावस्था में तुमने प्रतिदिन मेरे जीवन की रक्षा ही नहीं की है, तुम्हारी कहानियों ने मेरे लिये उस सीढ़ी का काम किया है, जिसके एक-एक डंडे पर चढ़ता हुआ मैं अपनी प्रियतमा के कक्ष की खिड़की तक पहुँच सका हूँ। आशा के शिखर पर पहुँचने के लिये सबसे ऊँचे डंडे का जितना सहयोग होता है, क्या उतना ही सहयोग सबसे नीचे वाले डंडे का नहीं होता?" इस पर रसकोश हँसकर कहने लगा—"महाराज! यह सत्य है। अब आप जाइये। आपने मेरी कहानी तो नहीं सुनी, किन्तु उसके कहने का जो मेरा उद्देश्य था, उसकी आंशिक पूर्ति हो गयी है। राजकुमारी को तुम्हारी प्रतीक्षा करनी पड़ी, यही सब कुछ है, क्योंकि आशा से ही कामना की वृद्धि हुआ करती है। सौभाग्य आपका साथ दे।"

राजा ने रसकोश को वहीं छोड़ दिया और अकेले ही दरबार में गया। जैसे ही वह द्वार के निकट पहुँचा, उसकी दाहिनी भुजा फड़क उठी। इस शकुन से वह गद्गद् हो उठा। उसने दरबार में प्रवेश किया और वहाँ राजकुमारी अनङ्गरागा को देखा। वह नील वर्ण के वस्त्र पहने हुये थी। उसका कञ्चुक, कपोत ग्रीवा के समान इन्द्रधनुषी रंग में रंगा हुआ था। इसके अतिरिक्त उसके कंचुक, मुकुट और अन्य आभूषणों में सूर्यकान्त मणियाँ पिरोई हुई थीं। राजकुमारी अपना

सिंहासन छोड़कर द्वार की ओर आ रही थी और बड़ी उत्सुकता से राजा की प्रतीक्षा कर रही थी। राजा को देखते ही वह लज्जित हो गयी और घबड़ा कर अपने सिंहासन के समीप लौट गयी। सूर्यकान्त राजकुमारी के सम्मुख जाकर गिर पड़ा और उसने राजकुमारी का हाथ पकड़कर उससे कहा—"भद्रे! एक समय की बात है कि एक राजा ने एक राजकुमारी को प्राप्त करने की इच्छा की। राजकुमारी तुम्हारे समान ही सुन्दरी थी। शर्त यह थी कि यदि राजा के किसी प्रश्न का उत्तर राजकुमारी न दे सके तो वह उसकी हो जायगी। बुद्धिमत्ता की मूर्ति! तुम्हीं बताओ कि राजा ने उससे क्या पूँछा होगा?"

राजकुमारी शीघ्रता से उठ खड़ी हुई और वह आनन्द से चिल्ला उठी—"हे चतुर पुरुष! तुम सब कुछ समझ गये हो।" इतना कहकर राजकुमारी अनङ्गरागा ने अपने हाथ में ली हुई माला को राजा के गले में डाल दिया और उसे अपना पति बना लिया। उसने कहा—"देखिये, इन मणियों में आपका बिम्ब हजार गुना प्रतिबिम्बित हो रहा है। अब आप मेरे नेत्रों की ओर देखिये। आप इनमें भी अपने-आपको प्रतिबिम्बित देखेंगे।" राजा ने राजकुमारी के नेत्रों में देखा। उनमें उसे अपना प्रतिबिम्ब उसी प्रकार दिखाई पड़ा, जिस प्रकार एक गहरी झील में सूर्य का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ा करता है। उसने उसके कान में फुसफुसाकर कर कहा—"तुमने मुझे लूट लिया है। अब तुम मुझे अपने रूप में वापस कर दो।" राजकुमारी ने नीचे देखते हुये धीरे से कहा—"क्या आप मेरे माधुर्य का रस यों ही प्राप्त कर लेंगे? भ्रमर ने कमल को क्या दिया था?" इतना सुनना था कि राजा वासना से कम्पित हो उठा। उसने उसके चिबुक के नीचे अपना हाथ लगा कर उसके मुख को ऊपर उठा दिया और उसके गुलाबी अधरों को चूम लिया। उस समय वह एकदम बेसुध हो गया। उसे ऐसा अनुभव होने लगा कि उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग में जीवन की लहरें समुद्र की लहरों की भाँति हिलोरें मार रही हैं। वह नेत्र रहते हुए अन्ध और

कान रहते हुए बहरा हो गया और उसके पैर लड़खड़ा गये। तदनन्तर अनङ्गरागा ने उसे उसके व्यामोह से जगाया। उसने कहा—"क्या आपको डर है कि आप मुझसे हाथ धो बैठेंगे ?" राजा ने उत्तर दिया—"मेरी प्यारी ! मैं तो काल के गाल से बच गया हूँ।" इस पर वह मन्द-मन्द हँस कर कहने लगी—"भय का तो कोई कारण नहीं था। यदि मैं आज भी आपके प्रश्न का उत्तर दे देती तो कल उत्तर देने से इनकार कर देती; चाहे आप केवल मेरा नाम ही क्यों न पूछते। मेरे लिये कल तक प्रतीक्षा करना असह्य हो जाता। यह तो अच्छा ही रहा कि सब कुछ आज ही हो गया।" यह सुनकर राजा ने कहा—"अरी चपले ! तूने पहले ही उत्तर देने से इनकार क्यों नहीं कर दिया, जिससे मैं इतनी यातनाओं से बच जाता ?" अनङ्गरागा ने उत्तर दिया—"यातनायें मैंने क्या कम सहन की हैं ? परन्तु मुझे स्वयं ही नहीं पता कि यह सब क्यों हुआ। मेरे स्वामी, आप को तो ज्ञात है कि स्त्रियों का स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे अपने प्रेमी को सताने में ही आनन्द का अनुभव करती हैं। वे अपने प्रेमी से उस बात के लिये भी निषेध ही करती रहती हैं, जिसे वे स्वयं चाहती हैं।"

यह सुनकर राजा सूर्यकान्त आनन्दातिरेक से मूर्च्छित हो गया। उसने कहा—"चलो, हम-तुम यह स्थान छोड़कर चल दें। मुझे इस स्थान से घृणा उत्पन्न हो गई है, क्योंकि यह मेरे दुःखों का घटनास्थल है। हम लोग अविलम्ब अपनी राजधानी को लौट चलें !" इस पर राजकुमारी ने कहा—"मेरे स्वामी की जो इच्छा।"

तदुपरान्त राजा ने रसकोश को राजकुमारी के परिचरवर्ग के साथ पहले ही भेज दिया और स्वयं अपनी वधू के साथ रात में अकेले ही प्रस्थान किया। चाँदनी रात में राजा और राजकुमारी जंगल के बीच से अगल-बगल घोड़ों पर सवार होकर जा रहे थे।

राजा श्याम वर्ण के घोड़े पर सवार था और राजकुमारी श्वेत वर्ण के घोड़े पर। वे साक्षात् दिन और रात के समान प्रतीत हो रहे थे। आधी रात को वे दोनों विश्राम करने के लिये वन में रुक गये। राजा अनङ्गरागा को उसके घोड़े से उतार कर एक विशाल वृक्ष के नीचे लताओं के कुञ्ज में ले गया। उस वृक्ष की पत्तियों से छन-छनकर भूमि पर आती हुई चन्द्रिका किसी राजप्रासाद के छज्जे में बनी हुई संगमरमर की जाली की भाँति प्रतीत हो रही थी। वहाँ पत्तों और पुष्पों से बनी हुई शय्या के ऊपर राजा ने गान्धर्व रीति से राजकुमारी के साथ विवाह कर लिया। वह बहुत समय तक उसके श्यामल केशपाश से खेलते रहे। चन्द्रिका के प्रकाश में राजकुमारी की काली अलकों से झाँकते हुए उसके दोनों नेत्र चन्द्रकान्त मणि के समान दिखाई पड़ रहे थे। राजा ने उसके केशों में रक्ताशोक के पुष्प गूँथ दिए, उसके वक्षस्थल पर नीले कमलों की माला लटका दी, उसकी कटि के चारों ओर श्वेत कमलों की मेखला बाँध दी और उसके चरणों में चमेली के फूलों के नूपुर पहना दिए। उसकी सुन्दरता से बेसुध होकर वह वासना एवं आनन्दातिरेक से विह्वल हो गया और सहसा बोल उठा—"मेरी प्यारी! तुम्हारा अनङ्गरागा नाम तो सार्थक है ही, तथापि तुम्हारी सहस्र किरणों वाली असीम सुन्दरता के लिये एक ही नाम पर्याप्त नहीं। तुम मृगलोचनी हो, क्योंकि तुम्हारे नेत्र तेजोमय किन्तु मृगशावक की भाँति कातर हैं। तुम्हारा नाम होना चाहिये नीलनलिनी, क्योंकि तुम्हारे काले-काले केश तुम्हारे कमल-नेत्रों के लिये सरोवर के समान हैं। तुम्हारा नाम मदनलीलालोलता भी हो सकता है। क्योंकि तुम्हारे नेत्र प्रेम की चंचलता से नाचते रहते हैं। तुम्हें शशिलेखा भी कहा जा सकता है। क्योंकि तुम चन्द्रकला के समान गौर और सुन्दरी हो। तुम्हारी भुजायें गोल हैं और लताओं के समान आलिङ्गन करने वाली भी, इसलिए तुम्हें भुजलता कहा जा सकता है। तुम्हें कुसुमयष्टि भी कहा जा सकता है, क्योंकि तुम्हारा

शरीर एक पुष्पवृन्त के समान सरल और सूक्ष्म है। तुम्हारी ग्रीवा शङ्ख के समान है। इसलिये तुम्हारा नाम कम्बुकण्ठी हो सकता है। तुम्हारी सुन्दरता की आभा रात्रि के समान है, इसलिये तुम्हारा नाम रजनीछाया हो सकता है। तुम्हारा नाम लावण्यमूर्त्ति भी हो सकता है, क्योंकि तुम पूर्ण सौंदर्य की मूर्ति हो। तुम मनोहारिणी हो, क्योंकि तुमने मेरे मन को छीन लिया है। तुम्हें मदलहरी भी कहा जा सकता है। क्योंकि तुम मद के सागर की लहर के समान हो। तुम्हें अलिप्रिया भी कहा जा सकता है। क्योंकि भ्रमरसमूह तुम्हारे अधरों को पुष्प समझ कर उन पर मँडराता करता है। तुम्हें वज्रसूचि कहना चाहिये, क्योंकि तुम्हारी बुद्धि वज्रसूची की भाँति अभेद्य है। तुम हेमकुम्भी हो, क्योंकि तुम्हारे स्तनयुगल स्वर्ण की तूँबी के समान हैं। तुम्हारा नाम पुलिनाकृति भी हो सकता है, क्योंकि तुम्हारे नितम्बों की वक्रता नदी के पुलिन के समान है। तुम्हारा नाम नानारूपिणी भी तो हो सकता है, क्योंकि तुम्हारी सुन्दरता अपार है। तुमको भृकुटीचला भी कहा जा सकता है, क्योंकि तुम्हारी भृकुटियों की चञ्चलता मेघमाला के बीच विद्युत् के समान है। किन्तु ये सब नाम भी तुम्हारे उस दिव्याकर्षण का याथातथ्य चित्रण नहीं कर सकते, जिसने मुझे पागल बना रखा है।" यह सुनकर अनङ्गरागा मुस्करा उठी। उसने कहा—"मेरे स्वामी! इन नामों में आप एक नाम तो भूल ही गये, जो मेरा वास्तविक नाम है।" राजा ने पूछा—"वह नाम कौन सा है?" राजकुमारी ने उत्तर दिया—"आप मेरे आराध्यदेव हैं और मेरे अङ्ग-प्रत्यङ्ग के स्वामी भी, इसलिये आप मुझे नीलीरागा कहिये, क्योंकि आपके प्रति मेरा प्रेम नील की भाँति स्थायी और अमिट है। हे मेरे मन के सूर्य! आप यह भी समझिये कि इस प्रेम के बिना नारी-सौन्दर्य विष मिश्रित अमृत है।"

राजकुमारी की यह बात सुनकर राजा का हृदय आनन्द से विदलित-सा हो गया। वह हर्षोल्लास से कह उठा—"अहा, मुझे

अपने जन्म का फल मिल गया। इसके अतिरिक्त सब कुछ निष्फल और निस्सार है। भविष्य में इसके अतिरिक्त मेरे पास और क्या होगा और यदि कुछ होगा भी तो इसकी अनुपस्थिति मेरे लिये मृत्यु से भी बढ़कर होगी?" यह सोचकर राजा सर्वशक्तिमान् भगवान् स्वयम्भू की प्रार्थना करने लगा। उसने कहा—"हे महेश्वर, मेरा स्वर्ग चिरस्थायी रहे और मेरे आवागमन की शृंखला यहीं टूट जाये! अथवा हे भगवन्! मुझे कालातीत कर दीजिये, जिससे मैं काल से अप्रभावित होकर अपनी प्रियतमा के संयोग के इस क्षण में ही सदा-सर्वदा स्थित रहूँ।"

भगवान् चन्द्रशेखर ने राजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली। वे दोनों प्रेमी चन्द्रिका-धवलित लताकुञ्ज में एक दूसरे के भुजपाश में पड़े सो रहे थे कि भगवान्-त्र्यम्बक ने उनकी ओर अपना तृतीय नेत्र खोल दिया। दोनों भस्म हो गये। भगवान् ने कहा—"अब भी इनके आवागमन की शृंखला छिन्न नहीं हुई, क्योंकि इन्हें तपोबल से मोक्ष की प्राप्ति नहीं हुई है। जन्मान्तर में भी इन दोनों का पुनर्मिलन होगा और ये पति-पत्नी होकर रहेंगे।"
